संस्थापक

योगयोगेश्वर अनन्तश्री

चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

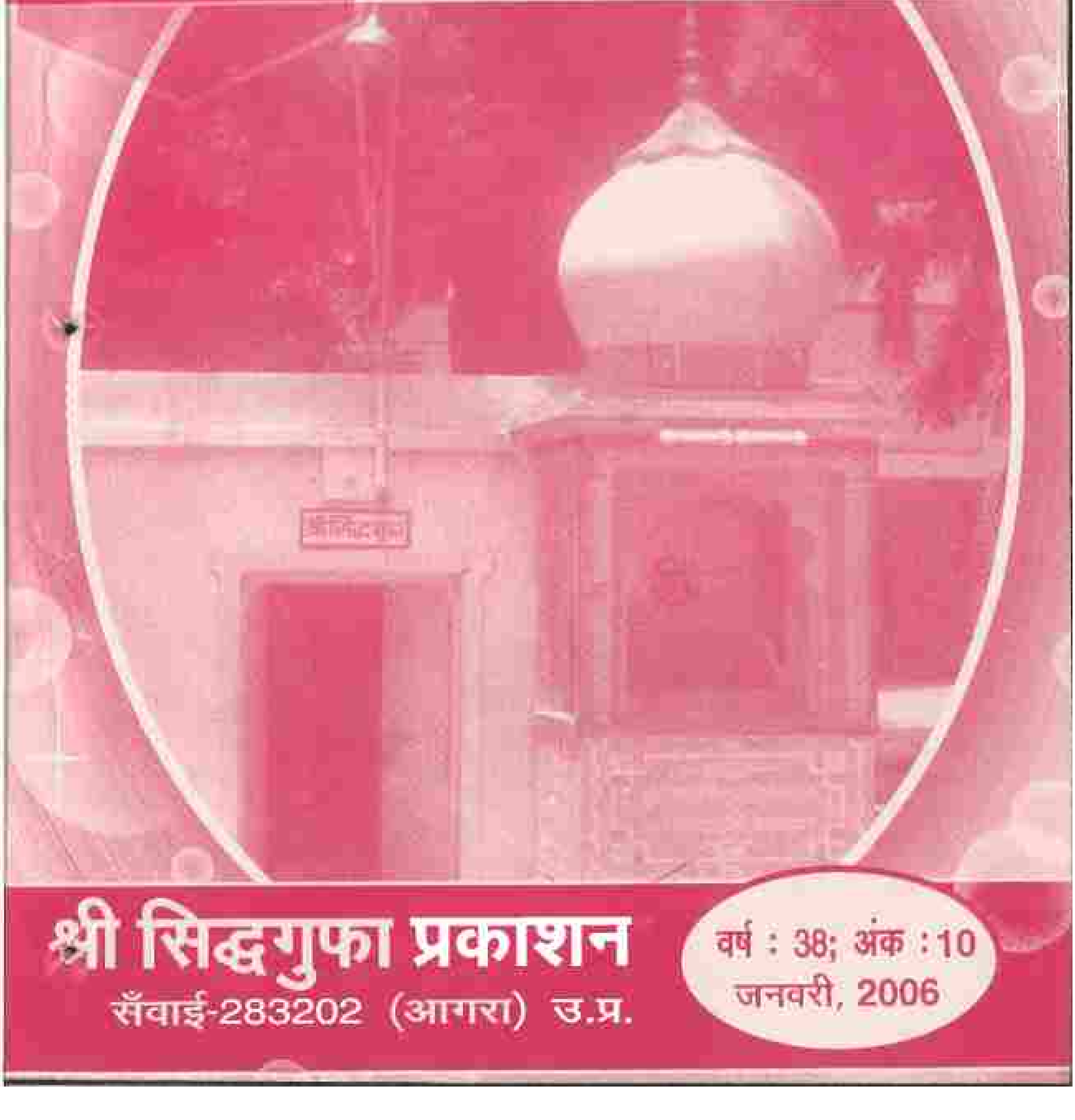

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 38; अंक : 10

जनवरी, 2006

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- हठ योग का अधिकारी कौन ? (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 8
- हिमालय के अमर महायोगी—आचार्य पूर्णचन्द पन्त 11
- श्री सद्गुरु स्तुति —श्रीमती सरिता भारद्वाज (दिल्ली) 16
- योगी अमीरानंदजी द्वारा......(२) —जुगमंदरदास शर्मा 17
- जैन धर्म में योग की अवधारणा —डा० रेखा चतुर्वेदी 21
- संस्कार शक्ति एवं साधना शक्ति (भाग-१४) —कु० रुक्मिणी वर्मा .. 24
- ईश्वर अवतार का हेतु —कृष्ण कुमार पाण्डेय (गोरखपुर) 29
- सत् गुरु की आवश्यकता —देवव्रत द्विवेदी (उमापुर) 32
- सत्य आचरण के बिना कोई साधना सम्भव ही नहीं —डॉ अनिल कुमार सिंह (गोरखपुर) .. 35
- करुणामूर्ति गुरुदेव —रचना शर्मा (गंगापुर सिटी) 38

एक प्रति	:	रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	:	रु. 100-00
द्विवार्षिक	:	रु. 190-00
आजीवन	:	रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 38
अंक 10

जनवरी
2006

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विचरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्यानां भवंतु तहतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला-
द्युतिनीराजित पादपंकजान्त।
अयि मुक्तकुलैकपास्यमानं
परितस्त्वां हरिनाम संश्रयामि।।

अर्थात्

सम्पूर्ण उपनिषद्‌रूप रत्नमाला की कान्ति के द्वारा तुम्हारे चरणकमलों का नखरूप प्रान्तभाग नीराजित हो रहा है और संसार से मुक्त (नारद-सनकादि) मुनि तुम्हारी उपासना में लगे हैं। इस प्रकार के हे श्री हरिनाम ! मैं तुम्हारा आश्रय लेता हूँ।

अमृतकण

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये।।

(श्रीमद्भाग. ३/२५/१५)

भगवान मनुष्य का शरीर या घर नहीं, बल्कि हृदय देखते हैं। मन विशाल हो तो भगवान आते हैं। मन में छिपी हुई अहंता, ममता, अपने-पराये की भावना ही मन को दुःखी करती है। मन के ये धर्म आत्मस्वरूप में भासमान होने के कारण आत्मा स्वयं को सुखी-दुखी मानती है, परन्तु वास्तव में वह आनन्दरूप है।

✿ ✿ ✿

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

(गीता ५/२९)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थ रहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

✿ ✿ ✿

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।

(गीता ६/१)

जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कार्य करता है, वह सन्यासी तथा योगी है और केवल अग्नि का त्याग करने वाला सन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओं का त्याग करने वाला योगी नहीं है।

✿ ✿ ✿

एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम्।
यथोक्तदक्षिणैर्विप्रैर्न तत् क्रतुशतैरपि।।

(ब्रह्मपुराण २९/६१)

करुणासिन्धु भगवान सूर्यदेव तो एक दिन के पूजन से वह फल देते हैं, जो शास्त्रोक्त दक्षिणा से युक्त सैकड़ों यज्ञों के अनुष्ठान से भी नहीं मिल सकता।

❒ विशेष लेख

हठयोग का अधिकारी कौन ?

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग दर्शन में समाधि प्राप्ति के कई उपायों का वर्णन मिलता है। इनमें हठयोग के उपाय का वर्णन **'प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य'** केवल एक यह सूत्र करता है। साधक ने एक काम करना है। चाहे मनोलय कर ले अथवा प्राणलय की साधना करे। **'यत्र मनोलीयते तत्र प्राणोऽपि लीयते, यत्र प्राणो लीयते तत्र मनोऽपि लीयते'** का सिद्धान्त योग में प्रसिद्ध है प्राणलय करने वाले साधक प्राणों पर आयमन करते हैं।

प्रच्छर्दन प्राण के बाहर फेंकने को कहते हैं और विधारणा अन्तर्कुम्भक का नाम है इस प्रकार से बाह्यकुम्भक और आन्तरकुम्भक दो प्रकार का कुंभक होता है।

योग शास्त्रों में आठ प्रकार के प्राणायाम का वर्णन मिलता है–

सूर्यभेदनम् उज्जायी सीत्कार शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा प्लाविनि-इति अष्ट कुंभकाः।

आजकल लोग प्राणायाम की ओर दिलचस्पी रखते हैं क्योंकि वे लोग ख्याति चाहते हैं। वे सुना करते हैं कि प्राणायाम से योगी जमीन से ऊपर उठ जाता है आकाश में स्थिर हो जाता है। वे त्राटक करना चाहते हैं। इसके प्रभाव को सुनते हैं कि इससे योगी दूसरे को मूर्छित कर लिया करते हैं। इन चमत्कारों को सुनकर मनुष्य इन साधनों की ओर आकृष्ट होता है ताकि उन्हें करके वे चमत्कारी पुरुष बन जायें। किन्तु वस्तुतः इस विद्या में उनका अधिकार नहीं होता। हमारे योग शास्त्र में अधिकारी को ही विद्या देने का संकेत किया गया। और ऐसा कहा गया है–

गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः
दत्ते च हानि स्यात् तस्मात् यत्नेन गोपयेत्।

इसलिये शास्त्रों का आदेश है कि अधिकारी को ही विद्या दी जाये। यदि अधिकारी नहीं तो वह गिर जायेगा उसकी हानि होगी और लोगों में भी अपवाद का कारण बन जायेगा। प्राणायाम का फल योग दर्शन में बताया है– **'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'** अर्थात् प्राणायाम के करने से प्रकाश का जो आवरण है उसका क्षय हो जाता है। मनुस्मृति में लिखा है–

दह्यन्ते हि ध्यायमानानां धातूनां यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणाम् दह्यन्ते मलाः प्राणस्य निग्रहात्।

प्राणायाम से इन्द्रियों के मल जल जाते हैं। मल के जल जाने पर इन्द्रियाँ अपनी पूरी शक्ति वाली बन जाती हैं। दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि–आदि योग्यता प्राणायाम के अभ्यासी को मिल जाती है। प्रकाशावरण क्षय हो जाने पर शनैः शनैः स्फुट प्रज्ञालोक की ओर योगी बढ़ जाता है यह प्राणायाम का उत्कृष्ट फल है। मुझे अपने एक बच्चे की घटना याद आई। जम्मू कटरा का रहने वाला हमारा एक बच्चा था उसका नाम संसार सिंह था। वह हमारे पास प्राणायाम सीखने आया था। बन्ध लगाने का उपदेश दिया। वह बीस प्राणायाम, प्रातः बीस प्राणायाम दोपहर को, बीस शाम को तथा बीस अर्ध रात्रि को इस प्रकार चार बार अभ्यास किया करता था। साथ में प्रणव जप की आज्ञा दी गई थी। उसने अत्यन्त उत्साह से तीन वर्ष तक प्राणायाम का अभ्यास किया। इसका फल उसे मिल गया। उसका अन्तः प्रकाश उदय हो गया। ऐसा नियन होता है जैसे मैं तुम्हारी आकृति देख रहा हूँ और ध्यानस्थ हो जाता हूँ तो तुम्हारे सारे संस्कार मुझे दीख जायेंगे साथ–साथ तुम्हारे सम्बन्धियों के भी संस्कार दीख जायेंगे। संसार सिंह के सामने से अमृतसर का कोई डाक्टर गुजर रहा था, उसने देखा कि इस डाक्टर के दो बालक छत पर खेल रहे हैं खेलते–खेलते नीचे गिर रहे हैं। संसार सिंह का संकल्प गया और परिणामस्वरूप दोनों बच्चे बच गये।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् के सिद्धान्त के अनुसार ही उसको यह स्थिति मिली। इन्द्रियों के मल जल जाने पर योगी को दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि सब कुछ होने लगते हैं। साधन योग में प्राणायाम एक मोटा साधन है। संसार सिंह के कई साथी आये। वे मुझसे कहने लगे–महाराज जी ! एक विशेष बात तो हमने भी देखी है हमारे होस्टल में पहले बहुत बन्दर आते थे। एक दिन हमने संसारसिंह से अपनी बात कही–संसार सिंह ने कहा–हमने हुकुम कर दिया है कल से यहाँ कोई बन्दर नही आयेगा। उसके वचन बिल्कुल सत्य निकले। उस दिन से वहाँ कोई बन्दर नहीं आया। इसी प्रकार से एक बार अपने गाँव के भेड़ बकरियों की ओलों से रक्षा की थी अपने संकल्प से ओलों को कहीं दूर खड्ड में भर दिया। एक बार जब हम जम्मू गये थे तो उसके भाइयों ने कहा महाराज जी संसार सिंह को भी आरती में आने के लिये आदेश दें। हमने कहा–संसार सिंह श्री प्रभु जी की आरती हो रही है आ जाओ। यह भजन में बैठा हुआ था। हमारी आवाज सुनकर वह वहीं से कहने लगा। गुरु जी मैं आ तो जाऊंगा परन्तु यह (दस्सो दफा केड़ी लग्गी है) बताये कि कौन सी दफा मुझ पर लग रही है। हमने कहा–अच्छा वहीं बैठा रह। रघुनन्दन टाट बाबा को भी हमने सँवाई गाँव में मन्दिर में अनुष्ठान करवाया। पुजारी काशीराम भी उसे आरती पूजा में खड़े होने को कहता। परन्तु उसने भी ऐसी ही बात कही थी। ध्यानस्थ रहने वाले योग के लिये कर्मकाण्ड नहीं है। अस्तु।

हठयोग के द्वारा जो अपने को मार लेता है वह अमर हो जाता है, परन्तु इसका अधिकारी कौन होता है ? जो महावीर्यवान हो, परमोत्साही हो, ब्रह्मचारी हो, इन्द्रियलोलुप न हो, आत्म संयम वाला हो तथा निरोग हो वह इसका अधिकारी होता है। कई व्यक्ति जन्म से ही अल्पवीर्य होते हैं वे इसके अधिकारी नहीं होते। प्राणायाम का अभ्यासी प्रणव का जाप करे। घी–दूध का सेवन करे। शनैः शनैः दादुरी वृत्ति बनती है। आसन जमीन से उठने लगता है, इसलिये प्राणायाम का अधिकारी वही है जो परमोत्साही, वीर्यवान हो, धैर्यवान हो तथा श्रद्धालु हो। जो वासना भोगी है। वह इसका अधिकारी नहीं है। उल्टे–पुल्टे खान–पान वाला यदि प्राणायाम करेगा तो उल्टा परिणाम पायेगा। मुझे एक घटना याद आई। मैं ऋषिकेश आश्रम में रह रहा था। दोपहर के समय एक व्यक्ति दीवाल फाँदकर आश्रम में आ गया और योगियों को भद्दी गालियाँ देने लगा। मैंने कारण पूछा। वह कहने लगा मेरे लड़के को योगियों ने मार दिया है। मैंने पूछा वह लड़का कहाँ है ? उसने कहा–काली कमली वाले क्षेत्र में रुका है। मैं उसके लड़के को देखने गया। हमने उससे पूछा–तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ? (वह मरणासन्न हालत में पड़ा हुआ था) उसने कहा मैं भगवान कृष्ण का ध्यान करता था। भगवान कृष्ण की तो आह्लादिनी शक्ति है उसका ध्यान करने वाला आह्लाद में ही रहता है। हमने पूछा– कैसे ध्यान करते थे ? उसने बताया–'मैं तस्वीर को देखता रहता था आँखों से पानी गिरता रहता था। वह वास्तव में त्राटक कर रहा था। त्राटक वाला यदि उस ज्योति को मूर्धा में ले जाये तो **'मूर्ध ज्योतिषिसिद्ध दर्शनम्'** के अनुसार उस ज्योति से सिद्धों के दर्शन होने लगते हैं। हमने उससे पूछा और क्या करते हो ? उसने बताया मैं प्राणायाम तथा शीर्षासन करता हूँ। चन्द्र मण्डल से श्रवित अमृत को योगी पान करता है। सामान्य व्यक्तियों के चन्द्रमण्डल से श्रवित इस अमृत को कुण्डलिनी पीती रहती है और फूल कर मोटी हो जाती है, सुषुम्ना द्वार को बन्द कर देती है। शीर्षासन करने से चन्द्रमण्डल से श्रवित अमृत को योगी पीता रहता है। कुण्डलिनी को खुराक मिलती नहीं है वह कमजोर हो जाती है और जग जाती है। हमने श्री वृन्दावन में करोली कुंज में एक केशवदास नाम के महात्मा को देखा था। वह तीन घण्टे शक्ति चालिनी मुद्रा करता था, तीन घण्टे शीर्षासन तथा तीन घण्टे प्राणायाम किया करता था। हमें देखकर कहने लगा–तुम्हारे अन्दर तो बड़ी विचित्रतायें दीख रही हैं। हम तो इतने दिन से मेहनत कर रहे हैं अभी तक सफलता नहीं मिली है अभी डेढ़ वर्ष का साधना क्रम बाकी है। डेढ़ साल के बाद पता चला था कि वह सफल हो गया था और कहीं चला गया है। शीर्षासन का फल है–

'विपरीत करणी मुद्रा होषा जरामृत्यु विनाशिनी' बुढ़ापा और मौत का नाश करने वाली मुद्रा है यह। हमें काशीपुर में एक वृद्ध मिला था सैकड़ों वर्ष की आयु थी लेकिन

जवान लगता था। उसने कहा मैं नियमित शीर्षासन करता हूँ शीर्षासन करने वाले को **'आहारः बहुलस्तस्य'** अर्थात् आहार बहुत व पौष्टिक होना चाहिये। उस लड़के ने बताया कि खाता पीता कुछ नहीं था। मैंने महात्मा गाँधी से शिक्षा ली और व्रत करने लगा था। शीर्षासन से भूख बन्द हो गई। एक बात अवश्य होती है कि जब प्राणायाम शीर्षासन आदि ज्यादा करते हैं तो फेंफड़े कफ को खींच लेते हैं। **'कफाद् अन्ने अरुचि भवेत्'** भूख बन्द हो गई। वह कहने लगा। मैंने सोचा–मैं अमृत पीता हूँ इसलिये भूख बन्द हो गई। मैंने इक्कीस–इक्कीस दिन का लगातार व्रत रखा। इन सब का परिणाम उसे यह मिला कि जब भी लघुशंका करता था धातु प्रवाह होता रहता था। कहाँ तो अमरता को देने वाली क्रियायें और कहाँ उसकी मरणासन्न हालत। उसका शरीर पीला और अस्थि पंजर मात्र अवशेष था। इसलिये इन क्रियाओं को यदि ठीक से न किया जाये तो यह मृत्यु का कारण भी बन जाती हैं। एक घटना एक और बच्चे की याद आई। निधौली कलां जिला एटा में ब्राह्मण का एक लड़का था उसे किसी ने प्राणायाम कराया। उसे खून का वमन होने लगा। इस पर गुरु ने कहा हठयोग का दो फल है या तो साधक मर ही जाता है या अमर हो जाता है। उसकी भी मरणासन्न जैसी हालत थी हमने उसे अपने पास रखकर ठीक कर लिया। कुछ लोग प्राणायाम जैसी क्रियाओं को ही हाथ लगाना चाहते हैं कई इसे व्यापार दृष्टि से भी अपनाते हैं। एक घटना श्री प्रभुजी के समय की और बताता हूँ।

हमारे एक गुरुभाई विद्या प्रकाश खोसला बिजली विभाग में काम करते थे। किसी महात्मा ने उसे बज्रोली सिखायी किन्तु ठीक प्रकार से सिखा नहीं पाये। उनके मूत्रेन्द्रिय में घाव हो गया और पीप पड़ गया, सूजन भी बहुत आ गई। श्री प्रभु जी लाला लाजपत राय मुहल्ले में किसी के यहाँ ठहरे हुये थे। वी. पी. खोसला बिजली ठीक करने के लिये उस मकान में आया। वहाँ की बिजली खराब हो गई थी कमरे के बाहर लिखा था– **'योगिराज प्रभु रामलाल जी महाराज'** यह पढ़कर वह गालियाँ देने लगा। लोगों ने पूछा क्यों ? क्या बात है तुम इस तरह गालियाँ क्यों दे रहे हो ? वह कहने लगा इन योगियों ने मेरा सत्यानाश कर दिया है वह श्री प्रभु जी के पास भी नहीं आया बाहर से ही चला गया। बिजली घर में जाते ही उसे नींद सी आ गई। वह स्वप्न में देखता है श्री प्रभु जी पास में खड़े हैं और कह रहे हैं बेटा ! तुम्हें बहुत दर्द हो रहा है। वह कहने लगा हाँ ! दर्द बहुत हो रहा है। उस समय भी वह गुस्से में ही बोल रहा था। प्रभु जी कहने लगे–बेटा! कम्पनी बाग के पास यह रेलवे का जो पुल है तुम उससे नीचे ढलान की तरफ जोर से दौड़ लगाओ। लंगोट वगैरह नहीं पहनना, सीधे ही नीचे को दौड़ना'। वह जग गया और सोचने लगा दर्द तो हो ही रहा है जो भी होगा देखा जाएगा। ये तो वही योगिराज हैं जिन्हें मैंने वहाँ देखा था, चलो इनके कहे अनुसार ही करता हूँ। ऐसा सोचकर वह तांगे से रेलवे

पुल के पास गया और साहस कर के नीचे की ओर जोर से दौड़ने लगा। क्योंकि ऊपर से ढलान था, दौड़ने से मूत्रेन्द्रिय पर बल पड़ा इसलिये चार, छः कदम दौड़ने पर ही उसका घाव फूट गया और सारा मवाद बाहर निकल गया। अब उसको पूरा-पूरा आराम मिल गया। वह श्री प्रभु जी के पास आया। श्री प्रभु जी ने फिटकरी आदि का पानी चढ़ाया इस प्रकार वह पूर्णरूपेण ठीक हो गया और हमारे अनन्य-निष्ठ गुरु भाईयों में एक बन गया। एक बार श्री प्रभु जी किसी साधक को त्राटक का अभ्यास करा रहे थे। उसने बीच में खान-पान छोड़ दिया परिणाम यह हुआ उसकी आँखें सूज गई। हलवा आदि बाँध कर बड़ी मुश्किल से ठीक किया-प्रभु जी ने रुष्ट होकर कहा- 'त्राटक बिल्कुल नहीं करना, तू अधिकारी नहीं है।'

यह बातें मैं तुम्हें क्यों सुना रहा हूँ ? इसलिये सुना रहा हूँ कि जो अधिकारी नहीं हैं वे इन क्रियाओं में हाथ डालते हैं और दुष्परिणाम भोगा करते हैं। लोग योग के ज्ञाता तो होते नहीं हैं। थोड़ी बहुत कहीं से पढ़-पढ़ाकर क्रियायें करने लग जाते हैं या किसी को कराने लग जाते हैं। इसी का दुष्परिणाम होता है इससे योग बदनाम होता है लोग बज्रोली जैसी कठिन क्रियाओं को हाथ लगाते हैं, त्राटक को हाथ लगाते हैं, प्राणायाम को हाथ लगाते हैं, खेचरी करने लग जाते हैं किन्तु उन्हें लाभ मिलने की बजाय हानि ही मिलती है और योग को ऐसे लोग बदनाम कर दिया करते हैं। इसलिए साधक को अपनी क्षमता, संवेग आदि को देखकर अपने अधिकार के अनुसार साधना का चयन करना चाहिए।

❋❋❋

पुण्डीरकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः।।

-अथर्ववेद

नौ द्वारों वाला हमारा कमलरूपी शरीर सत्व, रज, तम इन तीन गुणों से घिरा हुआ है। इसमें जीवात्मा के समान जो यक्ष (ब्रह्म) निवास कर रहा है, उसको ही ब्रह्म ज्ञानी लोग जानने का प्रयत्न करते हैं।

● सम्पादकीय

नव वर्ष मंगलमय हो !

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

ईसवी कलेण्डर के अनुसार १ जनवरी से नया वर्ष प्रारम्भ होता है, सरकारी कामकाज इसी के अनुसार चलता है। विक्रम सम्वत् कालगणना की हिन्दू पद्धति है, इसमें चैत्रमास की प्रतिपदा से नववर्ष प्रारम्भ होता है। पंजाब के लोग लोहड़ी (संक्रांति) से नया वर्ष मानते है। कालगणना आवश्यक है, इसलिए की जाती है, किन्तु कालचक्र निरपेक्ष भाव से निरंतर चलता रहता है और उसके साथ ही हमारी आयु का एक–एक वर्ष क्षीण होता जाता है। यह इस बात का संकेत है कि मानव के परमलक्ष्य यानि स्थायी शान्ति प्राप्त करने के उद्देश्य की पूर्ति हेतु उपलब्ध समयावधि निरन्तर न्यून हो रही है। जन्म–जन्मांतर से यह जीव दुःख ही दुःख भोगता चला आ रहा है, और स्थायी शान्ति नहीं मिल रही है। भगवान् पतञ्जलि देव योगदर्शन में बतलाते हैं–**'हेयं दुखमनागतम्'** अर्थात् पिछले कर्म संस्कारों का फल हमने भोग लिया, वर्तमान के संस्कार व कर्मफल भोगने में आ ही गया है जो भोगा जा रहा है। अब केवल अनागत दुःख अर्थात् आने वाले दुःख से हम बच सकते हैं उनके परिहार का उपाय किया जा सकता है। मनुष्य को अपने अच्छे बुरे कर्मों के अनुसार सुख दुःख मिला करता है। इसलिये भविष्य को सुधारा जा सकता है। सामान्य कहावत है– **'बीती ताहि विसार दे आगे की सुध लेहि'**।

मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, इसका एक–एक क्षण अमूल्य है। मनुष्य जन्म में हमें पिछले कर्मों के फल को भी भोगना होता है तथा संस्कार के अनुसार नया कर्म करना होता है जिसका फल कब मिलेगा, यह कहा नहीं जा सकता। तीव्र संवेग से किये गये पुण्य व पाप का फल इसी जन्म में मिलता है। मन्द गति से किये जाने वाले कर्मों का फल भी कालान्तर में मिला ही करता है। जीवन में चाहे लौकिक उन्नति प्राप्त करनी हो या पारमार्थिक दोनों ही क्षेत्र में पुरुषार्थ परम आवश्यक रहता है। कर्म किये बिना हम इस जीवन में सुखी भी नहीं रह पायेंगे न ही भविष्य के लिये उज्जवल कर्म व संस्कार विकसित कर पायेंगे। गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुये भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है–**योगस्थः' कुरु कर्माणि'** हे अर्जुन ! योग में स्थित रहते हुये कर्म करते चलो। इस प्रकार से तुम कल्याण पथ पर निरन्तर बढ़ते चले जाओगे। योगस्थ होकर कर्म करने से संसार के कार्य भी कुशलता पूर्वक सम्पादित होंगे तथा ध्यानयोग की दृढ़ता मिलेगी। योगस्थ

होकर कर्म करने का उपदेश गृहस्थ व विरक्त दोनों प्रकार के साधकों के लिये है। अर्जुन स्वयं गृहस्थाश्रम में थे इसलिये अर्जुन के माध्यम से सभी गृहस्थाश्रम में रहने वाले साधकों के लिये यह बात कही गयी है।

साधक को ध्यानयोग में सफलता पाने के लिये एक निश्चित समय पर निर्धारित समय तक निरन्तर अभ्यास करना होता है तभी सफलता मिलती है। ध्यानयोग की सफलता लौकिक सफलता में कारण बना करती है। जो लोग एकाग्रचित होकर ईश्वर चिन्तन करते हैं वे लोक में भी उन्नति के शिखर तक पहुँच जाया करते हैं। कई बार गृहस्थ साधक –हम गृहस्थी हैं' ऐसा कहकर साधना मार्ग से बचने का बहाना ढूँढ लेते हैं। यह उचित नहीं है। सिद्ध–सन्तों ने गृहस्थ में रहते हुए भी साधना करने की आज्ञा सबको दी है। कोई अत्यन्त प्रबल संस्कारवश गृहस्थ में प्रवेश न करके सीधे ही विरक्त योगी साधक बनकर साधना करता है तो यह निश्चित है कि वह अपने लक्ष्य को जल्दी पा जाया करता है। गृहस्थ–विरक्त का साधना में भेद बहुत कम है। हमारे अनेक प्राचीन ऋषियों ने गृहस्थ में ही संयमित यौगिक जीवन जीकर सिद्धत्व को प्राप्त किया है। योग साधना संयमित एवं नियमित रहकर करने का विषय है। जैसे भोजन गृहस्थी व विरक्त दोनों को समान रूप से आवश्यक है ऐसे ही साधना भी सब के लिये आवश्यक है। अखिलात्मा भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने गीता में अर्जुन के माध्यम से सब को योगी बनने की आज्ञा दी है। हमारे गुरुदेव भगवान् भी सभी को ध्यानयोगी बनने की आज्ञा देते रहे हैं। प्रथमतः साधक योग का तीव्रतम जिज्ञासु बने। शनैः शनैः योग के संस्कार दृढ होते चले जायेंगे, साधक योग का अधिकारी बन जायेगा।

योग मार्ग के भी अवान्तर भेद व शाखायें हैं। इनमें से हठयोग सहित जो राजयोग या ध्यानयोग का अभ्यास करते हैं वे शीघ्र लक्ष्य को पा जाया करते हैं। ध्यानयोग का दुर्लभ साधन भी मिल जाये तथा साधक का संवेग भी तीव्र हो तो **'तीव्र संवेगानामासन्नः'** के अनुसार तीव्र संवेग वाले को समाधि लाभ शीघ्र हो जाता है। संवेग तीव्र हो किन्तु मार्ग का चयन ठीक न हो तो भी उपलब्धि नहीं हुआ करती है। कई लोग ध्यान–भजन में तो लगे ही रहते हैं किन्तु उचित विधि–विधान न जानने के कारण एवं सिद्ध गुरु से मार्ग दर्शन तथा गुरुकृपा के अभाव में अभीष्ट फल प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इसलिये साधक के लिए सही गुरु की शरणागति आवश्यक है जिससे योग का रहस्यमयी मार्ग मिल जाये और साधक आगे बढ़ सके। योगी बनने के लिये घर–द्वार छोड़कर इधर–उधर भटकना नहीं चाहिये। पुण्य के प्रताप से योगी गुरु का सानिध्य मिल जाया करता है। सिद्ध गुरु किसी को भी घर छोड़ देने की आज्ञा नहीं देते। न ही योग में किसी वेश विशेष की ही आवश्यकता है।

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज हिमालय में विराजमान कल्पान्तजीवी अनादि सिद्ध हैं। योग देह से नित्य वहाँ विराजमान रहते हुये भी कार्य–निर्माण की विद्या से शरीरों की रचना करके पृथ्वी पर आकर अनेक रूपों में योग विद्या का प्रचार करते रहते हैं। उन्होंने यहाँ आकर जन्म–जन्मान्तर के संस्कारी आत्माओं को योग मार्ग का अलभ्य उपदेश दिया है। महाप्रभु रामलाल जी महाराज के रूप में रहते हुये पहले वे वन–जंगलों में वनखण्डी (कोपीन) वेश में ही रहे। कालान्तर में, जीवन के उत्तरार्ध में धोती कुर्ता का विप्र वेश धारण कर अनेक योग आश्रमों की स्थापना की। सन् १९२० के पश्चात् उन्होंने अनेक योग प्रचार केन्द्र खोले और योग का प्रचार किया। बहिरंग व अन्तरंग दोनों प्रकार के योग का प्रचार उन्होंने किया। उन्होंने अपने गृहस्थ बच्चों को योग का वह मार्ग दिया है जिसे अपने विरक्त शिष्यों को समाधिस्थ कर बैठा दिया करते हैं। उनके साधारण विप्र वेश को देखकर कोई भी सामान्य व्यक्ति नहीं जान सकता कि इस सामान्य वेश में ही ब्रह्म–प्रतिष्ठित है। हमारे गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी की भी यही बात है। वे स्वयं सदा ही धवल धोती कुर्ता में ही सुशोभित रहा करते थे किन्तु उनके शिष्यों में विभिन्न वेशधारी साधक थे। कोई गेरुआ वस्त्र में रहता, तो कोई टाटाम्बरी था। कोई केवल कोपीनधारी था तो कोई पीत वस्त्रों में रहता। इस प्रकार से वेश–विशेष का महत्व गुरुदेव के यहाँ कभी नहीं रहा।

आईये ! इस नव वर्ष की पावन बेला में गुरुदेव के सब बालक लौकिक उन्नति के साथ–साथ योग के परम लक्ष्य की ओर बढ़ें। गुरुदेव ने **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** के महामन्त्र का उद्घोष करते हुये सभी जीवों को निरोग, सुखी एवं समृद्ध बनाने का सदा ही प्रयास किया है। हम भी उनके इस संकल्पपूर्ति में योगदान दें। हम सब अपने–अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुये योगमय जीवनयापन करते हुये ज्ञान अर्जन द्वारा उज्जवल भविष्य को देख पायें। हमारा यह वर्ष सुखमय बीते, यही मंगल कामना है।

जय सद्गुरुदेव !

❊❊❊

कलिःशयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठिस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्।।

–एतरेय ब्राह्मण

आलस्यवश पड़े सोते रहना–कलियुग है, निद्रा से जाग कर उठ बैठना द्वापर युग है, उठ खड़े हो जाना त्रेता युग और चल पड़ना सतयुग है, इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

पूर्व प्रकाशित से आगे–

हिमालय के अमर महायोगी

आचार्य पूर्णचन्द पन्त

योगिराज चन्द्रमोहन जी को स्वप्न में दर्शन देकर अपने पास बुलाना और उन्हें सकल योगैश्वर्य का उत्तराधिकारी बना देना

योगिराज चन्द्रमोहन जी श्री प्रभु जी के अनन्य भक्तों और सर्वतोभवेन समर्पित शिष्यों में से एक हैं।

उनका जन्म जिला करनाल (हरियाणा) के ग्राम अलुपुर में पवित्र गौड़ वंशीय ब्राह्मण पंडित देवीराम जी के घर १६ अक्तूबर सन् १६०७ को हुआ।

वे जन्म से ही योगी थे और योगेश्वर श्री कृष्ण में लय रहा करते थे। ४–५ वर्ष की आयु में ही उन्हें श्री कृष्ण के बाल रूप में दर्शन हुआ करते थे और वे उनके साथ खेला करते थे। उनकी बाल लीलायें श्री कृष्ण की बाल लीलाओं से मेल खाती थी। ३–४ वर्ष की आयु में वे अपने घर में रखे मक्खन को चुराकर बड़े चाव के साथ खा जाया करते थे।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई और फिर उच्च शिक्षा के लिये उन्हें श्री मद् दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय लाहौर में प्रवेश दिलाया गया जो कि–उस समय का एक आदर्श गुरुकुल था और तपोमूर्ति आचार्य विश्वबन्धु जी उसके संचालक और प्राचार्य थे। बाद में वे लाहौर छोडकर अमृतसर में शिक्षा ग्रहण करने लगे। शिक्षाकाल में आपके मन में योगी बनने की प्रबल भावना जाग्रत हुई और इसी भावना के वशीभूत होकर वे अमृतसर नगर से कुछ मील दूर एकान्त में स्थित एक शिवालय में चले गये और दो महीने वहाँ रहकर बड़े तीव्र संवेग से भगवान शंकर की उपासना करते रहे। अनुष्ठान काल पूरा होने से दो दिन पूर्व उन्हें स्वप्न में भगवान शंकर के दर्शन हुए और उनका आशीर्वाद प्राप्त हुआ। अगले दिन योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज के दर्शन हुए और उन्होंने यह आदेश दिया– 'अब तुम हमारे पास चले आओ।'

इससे सन्तुष्ट होकर और अपना अनुष्ठान पूरा करके वे अमृतसर लौट गये और अध्ययन कार्य में जुट गये, किन्तु मन में बार–बार यह प्रश्न उठा करता था कि स्वप्न में दर्शन देने वाले वे महात्मा कौन हैं और कहाँ रहते हैं ? सौभाग्य से कुछ ही दिन बाद योगिराज मुलखराज जी महाराज से उनकी भेंट हुई और उनसे प्रभु का परिचय पाकर वे उनके दर्शनार्थ योग साधना आश्रम ऋषिकेश पहुँच गये। उस समय उनकी आयु १६ वर्ष

के लगभग थी। प्रभु रामलाल जी महाराज उन्हें देखकर मुस्कराते हुए बोले– "अच्छा ! तुम आ ही गये हो, तुम तो हमसे पूछ रहे थे कि कहाँ आऊँ–कैसे आऊँ" ? उन्होंने उन्हें बड़े प्यार से कुछ दिन अपने पास रखा, शुभ मुहूर्त्त में विधिपूर्वक योगदीक्षा दी और उनकी आन्तरिक भावना को देखते हुए उन्हें योगसाधना के लिये वृन्दावन भेज दिया। श्री वृन्दावन धाम में रहते हुए वे नियम पूर्वक प्रातः ब्राह्म मुहूर्त्त में गुरोपदिष्ट विधि से तीन घंटे ध्यानाभ्यास किया करते थे, गुरुमन्त्र का हर समय मानसिक जप करते थे तथा शाम के समय योगेश्वर श्रीकृष्ण के लीला स्थलों के दर्शन किया करते थे। ६ महीने के अनवरत अभ्यास से योगविद्या के सभी रहस्य उनके सामने प्रकट हो गये, उनको महावाक्यों का साक्षात्कार हुआ तथा कुण्डलिनी जागरण एवं षट्चक्र भेदन आदि क्रियायें सिद्ध हो गई। १८ वर्ष की अल्पायु में ही उनको दूरदर्शन, दूरश्रवण, वाकसिद्धि, संकल्प सिद्धि तथा कायनिर्माण आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो गई। इन दुर्लभ सिद्धियों को प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें रत्तीभर भी अहंकार नहीं हुआ। उन्होंने न तो कभी सिद्धियों का प्रदर्शन किया और न अपना अभ्यास ही छोड़ा। उनकी स्थिति वही थी जैसा कि–वे बाद में अपने शिष्यों को सावधान करते हुए कहा करते थे– "योगी को चाहिये कि वह समुद्र पीकर भी अपने होंठ सूखे दिखाये"।

उन्होंने योगेश्वर प्रभु रामलाल जी को सर्वतोभावेन आत्मसमर्पण कर दिया था। ३२ वर्ष की आयु तक वे प्रभु जी की अगाध श्रद्धा एवं समर्पण भाव से सेवा करते रहे तथा उनके संरक्षण एवं मार्गदर्शन में योग साधना करते रहे। इस बीच प्रभु जी ने कृपापूर्वक उन्हें खेचरी सिद्ध करा दी तथा योगदीक्षाएँ देने की आज्ञा प्रदान की और स्वयं कुछ महीनों के लिये ऋषिकेश से अल्मोड़ा चले गये। दीक्षा देने में अत्यधिक संकोच करते हुए भी अपने गुरुदेव की आज्ञा के पालनार्थ उनकी अनुपस्थिति में उन्होंने कई विरक्त सद्गृहस्थों तथा सन्यासियों को योगदीक्षा दी और उनकी ऊँची-ऊँची ध्यानस्थितियाँ बनी। यह सब देखते हुए भी वे शिष्य ही बने रहना चाहते थे, गुरु बनना उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं था, वे प्रपंच से बचना चाहते थे और निवृत्ति मार्ग को अपनाना चाहते थे। उनके मन में वैराग्य के भाव दिन–प्रतिदिन प्रबल होते जा रहे थे।

सन् १६३५ के आसपास की घटना है, उन दिनों प्रभु जी योगसाधना आश्रम ऋषिकेश के व्यवस्था का काम उन्हें सौंपकर स्वयं अमृतसर में निवास कर रहे थे। इस बीच एक दिन उनके मन में इतना तीव्र वैराग्य जाग्रत हुआ कि–वे मृगछाला, टाट, कमण्डल और एक शीशी में बड़ का दूध लेकर हिमालय की ओर प्रस्थान करने लगे। ज्योंही वे आश्रम के द्वार से एक कदम आगे निकले त्योंही पोस्टमेन ने आकर उन्हें एक पत्र पकड़ाया। वह पत्र योगेश्वर प्रभु रामलाल जी का था। पत्र में लिखा था–

"चिरंजीव ! हम हिमालय से आकर बस्तियों में रह रहे हैं और तुम हिमालय की ओर

जाने की सोच रहे हो। ऐसा करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। तुमने जो कदम आगे बढ़ाया है उसे तुरन्त पीछे हटा लो, यह हमारी आज्ञा है''।

पत्र को पढ़कर उनका सारा उत्साह जाता रहा और वे पीछे मुड़कर आश्रम के अन्दर चले गये। उन्होंने अपने गुरुदेव से मूक निवेदन किया–''प्रभो ! आज मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गयी थी इसके लिये आप मुझे क्षमा कीजियेगा। भविष्य में आपकी आज्ञा के बिना मैं कोई भी नया कार्य नहीं करूँगा। अब मैं वही करूँगा जो आप चाहेंगे या करवायेंगे। आपके पवित्र आदर्शों का पालन करना ही अब मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य होगा।

तब से लेकर योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज सदा–सदा के लिये प्रभु जी के बन गये। उनका मन और बुद्धि श्री प्रभु जी के मन और बुद्धि में लय हो गये।

सन् १९३८ में प्रभु जी के लीलावसान के उपरान्त वे शोकातुर एवं निराश होकर पुनः तीर्थाटन एवं तपश्चर्या करने निकल पड़े और बड़े तीव्र संवेग से कभी वृन्दावन में यमुना जी के तट पर, कभी हरिद्वार में चण्डी पर्वत पर और कभी ब्रह्मपुरी के निर्जन वनों में तपस्या करते रहे। सन् १९४२ में श्री प्रभु जी की प्रेरणा से वे सवाँई ग्राम स्थित उनकी पावन तपस्थली– ''गुरु का बाग'' पहुँचे। वहाँ उनकी कच्ची गुफा की लिपाई पोताई की, उसका दरवाजा लगवाया तथा उसके पास ही रहने के लिये घास का एक छप्पर बनाया। वह स्थान उस समय एक वीरान जंगल की तरह था। चारों ओर झाड़ी–झंझाड़ थे, जिनमें सर्प, बिच्छू आदि रहा करते थे। श्री प्रभु जी की पवित्र कीर्ति का विस्तार करने का उद्देश्य लेकर वे गर्मी-सर्दी तथा मच्छरों का आघात सहन करते हुए उस स्थान पर रहने लगे और योग प्रचार कार्य में जुट गये। वे आरम्भ में योगासन तथा यौगिक क्रियाओं द्वारा रोगियों का इलाज करते रहे, बाद में उन्हें अपने सामने ध्यानाभ्यास भी कराने लगे। धीरे–धीरे वहाँ रोगियों, आर्तजनों एवं जिज्ञासुओं की इतनी भीड़ एकत्रित होने लगी कि उन्हें भोजन करने का भी समय नहीं मिल पाता था। वहाँ उन दिनों न तो भोजन बनाने की सुविधा थी और न उसके लिये उनके पास समय ही था। अतः वे मध्यान्ह दो बजे तक लोगों को निपटाकर सवाँई ग्राम में स्थित मन्दिर के पुजारी काशीराम जी के पास जाकर भोजन किया करते थे। भोजन एक ही समय करते थे। रात्रि को निराहार रहते थे। वहाँ से लौटकर अपने हाथ से सूत्र नेतियाँ तैयार किया करते थे। सन्ध्याकाल को आरती–पूजन के पश्चात् वे ग्रामवासी वृद्धजनों से प्रभु जी की लीला कथाओं को सुनकर आनन्दित हुआ करते थे।

इस प्रकार उन्होंने थोड़े से समय में ही उस स्थान को एक सुन्दर आश्रम के रूप में परिवर्तित कर दिया और अपने गुरुदेव योगेश्वर प्रभु रामलाल जी के स्मारक के रूप में उसकी तपस्थली का नाम श्री सिद्धगुफा सवाँई रखा। वहाँ से उन्होंने देश के कोने कोने

में तथा विदेशों में श्री प्रभु जी की अमरकीर्ति का विस्तार किया तथा योगविद्या की महिमा से जन-जन को अवगत कराया। उनके सद्प्रयत्नों से सवाई ग्राम सवाई धाम बन गया और वह पवित्र आश्रम एक "सिद्धपीठ" बन गया।

योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज ने लाखों रोगियों को निरोग बनाया, लाखों संकटग्रस्त जनों का संकट दूर किया, हजारों मरणासन्न व्यक्तियों को जीवनदान दिया, हजारों जिज्ञासुओं को शक्तिपात दीक्षा द्वारा योगी बनाया तथा हिमालय की कन्दराओं में वर्षों से योगसाधना में लगे हुए सैकड़ों तपस्वियों को अपने संकल्प मात्र से सिद्ध बना दिया। किन्तु इस सबका श्रेय वे अपने गुरुदेव को ही देते रहे। अपने बारे में वे सदा यही कहा करते थे कि– मैं तो श्री प्रभु जी का एक मामूली सा सिपाही हूँ। वे तो योग-ऐश्वर्य के स्वामी हैं; सारा भण्डार उन्हीं का है, मैं तो केवल एक करछी की तरह हूँ और करछी का ही काम कर रहा हूँ।

योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी अपने गुरुदेव योगेश्वर रामलाल जी महाराज के चित्र को हृदय से साथ लगाकर एवं सामने करके लोगों को योगदीक्षा दिया करते थे और कहा करते थे कि– "हम सबके गुरुदेव श्री प्रभु जी सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापक हैं, इनका जितना अधिक चिन्तन करोगे योगमार्ग में उतनी ही अधिक प्रगति होगी"।

हजारों जिज्ञासुओं को एक साथ सिद्ध बना देने की सामर्थ्य रखने वाले, हजारों मील दूर अमेरिका आदि देशों में स्थित कई पवित्रात्माओं को पत्र द्वारा पुष्प प्रसाद अथवा सिद्धगुफा की पवित्र रज भेजकर ध्यानयोगी बना देने वाले एक सिद्ध योगिराज अपने को सदैव एक सामान्य व्यक्ति की तरह ही प्रदर्शित करते रहे। उनकी ख्याति सुनकर कुछ विदेशी वैज्ञानिक यह जानने के लिये कि "इनके अन्दर ऐसी कौन सी शक्ति काम कर रही है तथा सिद्धगुफा की मिट्टी में ऐसे कौन से तत्व हैं जिससे इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण कार्य हो रहे हैं ?" अपने वैज्ञानिक उपकरण लेकर उनके पास पहुँचे और उनके मस्तिष्क, हृदय आदि अंगों तथा गुफा की मिट्टी का परीक्षण किया। जब वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे तो योगिराज जी मुस्कराकर बोले– "लल्ला विशेषता मुझमें या मेरी इस गुफा की मिट्टी में कुछ भी नहीं है। विशेषता वाले तो हिमालय में बैठे हुए हैं उनकी कृपा से ही सब कुछ हो रहा है। यदि हममें या इस गुफा की मिट्टी में कुछ विशेषता है भी तो उसे तुम्हारी ये निर्जीव मशीनें नहीं बता सकती"। यह सुनकर वे लोग निराश होकर लौट गये।

योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज के सैकड़ों शिष्य सिद्धकोटि के हैं जो कि उनके अमोघ आशीर्वाद से हिमालय की कन्दराओं में समाधिस्थ हैं। बस्ती में रहने वाले उनके विशेष कृपापात्र शिष्यों में योगिराज श्री श्याम बिहारी शुक्ल, योगिराज श्री रघुनन्दन प्रसाद

(फिरोजाबाद वाले–टाट बाबा) और संसार सिंह के नाम प्रमुख हैं। अब इन तीनों का ही शरीर शान्त हो चुका है।

श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जहाँ एक आदर्श शिष्य रहे हैं वहीं वे एक आदर्श गुरु भी हैं। उनके उज्जवल व्यक्तित्व में सदगुरु और सदशिष्य का अनूठा सम्मिश्रण रहा है। जहाँ एक ओर वे अपने गुरुदेव के प्रति समर्पित थे और उन्हें ही अपना सर्वस्व समझते थे वहीं दूसरी ओर अपने शिष्यों के प्रति उनका हृदय अगाध वात्सल्य एवं आत्मीयता के भावों से परिपूरित रहता था। वे अपने शिष्यों को अत्यन्त स्नेह से अपने हृदय से लगाकर पुचकारते हुए कहा करते थे– "लल्ला ! तुम तो मेरी आत्मा के टुकड़े हो"।

उपनिषदों में सद्गुरु के जो लक्षण बताये गये हैं वे उनमें अक्षरशः पाये जाते हैं जैसेः–

आचार्यो वेदसम्पन्नों विष्णुभक्तों विमत्सरः।
योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मको शुचिः।।

गुरु भक्ति समायुक्तों पुरुषो विशेषतः।
एवं लक्षण सम्पन्नो गुरुरित्यमिधीयते।।

अर्थात–जो स्वयं आचार्य हो, वेदों का ज्ञाता हो, विष्णुभक्त हो, किसी से ईर्ष्या–द्वेष न रखता हो, योगविद्या में पारंगत हो, योग में दृढ़ निष्ठा वाला हो, योग परायण हो, पवित्र रहने वाला हो, अनन्य गुरु भक्त हो तथा जो परमात्मा का पूर्णरूपेण साक्षात्कार कर चुका हो इन सब उत्कृष्ट गुणों के कारण ही वह महापुरुष सद्गुरु कहलाता है। योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज अपने ध्यानाभ्यासी शिष्यों को कहीं श्री कृष्ण के रूप में, कहीं गणपति के रूप में, कहीं योगेश्वर प्रभु रामलाल के रूप में, और कहीं भगवान सदाशिव के रूप में दर्शन देते रहे हैं और अब भी वे इन्हीं रूपों में दर्शन देते रहते हैं। किन्तु व्यवहार काल में उन्होंने अपने आपको सदा छिपाये रखा। चाहे कोई उनका अन्तरंग ही क्यों न रहा हो वह भी उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाया। और वे एक कुशल कर्मयोगी की तरह जीवनभर जन कल्याण में संलग्न रहे। जीवन के अन्तिम क्षण तक वे देश के कोने–कोने में घूमकर जन–जन को आत्मकल्याण का सन्देश देते रहे।

२५ जून १६६० को २१ दिन के एकान्त वास के समापन के साथ ही ८३ वर्ष की आयु में उनकी आत्मज्योति प्रभु रामलाल जी की ज्योति में समा गई।

❊❊❊

श्री सद्गुरु स्तुति

—श्रीमती सरिता भारद्वाज (दिल्ली)

जय जयति जय प्रभु चन्द्रमोहन
जयति जय योगेश्वरम्।
जय सिद्धियों के सिद्ध जय-जय,
सिद्धों के सिद्धेश्वरम्।।
योगीश जय योगेश जय-जय
जयति जय देवेश्वरम्।।
जय जयति ज्योति योग की जय
जयति जय सर्वेश्वरम्।।
जय जय प्रणव के रूप जय-जय,
जयति जय परमेश्वरम्।।
जय पाप नाशक तापहारक,
जयति जय दीनेश्वरम्।।
जय जयति आनन्दराशि गुरुवर,
जयति मोद विवर्धनम्।
जय जयति अविनाशी अलौकिक,
जय अगम अखिलेश्वरम्।।
जय जय शिरोमणि योग के जय,
योगियों के ईश्वरम्।।
जय जयति आगम निगम जय जय,
जयति देव सुरेश्वरम्।।
जय जयति जय प्रभु चन्द्रमोहन
जयति जय योगेश्वरम्।।
जय जयति आनन्दकन्द परमानन्द,
जय सिद्धेश्वरम्।।
जय जयति प्रभु प्राणवल्लभ,
जयति श्री प्राणेश्वरम्।।
जय जयति गुरु प्रभु चन्द्रमोहन
जयतु श्री कुण्डलेश्वरम्।।

❊❊❊

सिद्धयोग कार्यालय की प्रस्तुति–

योगी अमीरानन्दजी द्वारा रचित भजनों में उनके ''ध्यानानुभव''-(२)

महाप्रभुजी ने देखा माँ डर गई है तो वे आँख खोल कर तुरन्त मुस्करा दिये। अपने बच्चे को सकुशल पाकर माँ के भयाक्रांत प्राणों में सहसा जैसे पुनः जीवन लौट आया। माँ भागवन्ती अपने बच्चे को देख–देखकर बहुत हर्षित हो रही है। किन्तु उनके मन में अभी भी शंका बनी हुई है। अभी आधी रात शेष पड़ी है हर तरफ घोर अंधेरा है। किसी को भी जगाने की उनकी हिम्मत नहीं हो रही है। उन्हें भय है कि कहीं ऐसा न हो कि घर के अन्य लोगों को जगाने के लिए कमरे का दरवाजा खोलते ही प्रेतात्मा फिर से बच्चे पर घात करने के लिए कमरे में घुस आये। बच्चे को छूने में उन्हें बहुत भय हो रहा है। उन्हें डर है कि बच्चे के साथ प्रेतात्मा कोई माया तो नहीं रच रही है ? बच्चे का मुस्कराना उन्हें बहुत सन्देहजनक प्रतीत हो रहा है। महाप्रभु जी ने जब देखा कि माता भय से अत्यन्त व्याकुल हो रही हैं तो वे तुरन्त अपनी माता के भय को दूर करके उन्हें प्रसन्न करने की लीला रचने लगे। वह जोर की किलकारी मारते और अपनी माँ के ऊपर बार–बार कूदने–उछलने लग जाते थे। इस प्रकार माँ का भय दूर कर उन्हें हँसाने की चेष्टा करने लगे। साक्षात ईश्वरस्वरूप अपने 'लाला' की प्रेमपूर्ण बाल हरकतों को देखकर वह अपना भय भूल गई और तुरन्त उन्होंने अपने बच्चे को गोद में उठा लिया और पूर्ववत निर्भय होकर बच्चे को बार–बार प्यार करने लगी। महाप्रभुजी कभी रोते थे कभी चिल्लाते थे, बिस्तर पर रोल मचाते थे। कभी अपनी माँ को अपना नाच दिखाने लग जाते थे कभी दीपक को बुझाने के लिए दीपक की लौ को पकड़ने के लिए दौड़ पड़ते।

सवेरा होते ही माँ ने सबको सारी बात बतलायी। रात की रहस्यपूर्ण बात को लेकर सबको बहुत आश्चर्य था आखिर वह कौन था जो बच्चे से बातें करता था ? कोई भगवान की इस लीला के रहस्य नहीं जान सका। इस घटना को सुनकर दूर–दूर से बच्चे का दर्शन करने के लिए लोग आने लगे। महाप्रभुजी अपनी बाल हरकतों द्वारा सबको अपनी अद्‌भुत लीलाएँ दिखलाते थे जिन्हें कोई नहीं समझ पाता था। 'बालप्रभु' तुरन्त ही सबके मन को भा गये। पिता श्री गंडाराम जी के घर के द्वार पर हर समय बच्चे के दर्शनार्थ भीड़ लगी रहती थी। छोटे से प्रभु जी के सामने लोग जो भी अपनी कामना करते थे वह तत्काल पूर्ण हो जाती थी। कभी–कभी उनके मुखमण्डल पर इतना तीव्र तेज व्याप्त हो जाता था

कि उनके दर्शन करने वालों की आँखें स्वतः ही बन्द हो जाती थीं।

अपनी माता जी के प्रति तथा अन्य अपने अनेक संस्कारीजनों के प्रति श्रीमहाप्रभुजी का विशुद्ध प्रेम निहार कर हृदय स्वाभाविक ही प्रेम और शान्ति से भर कर शुद्ध हो जाता है। अमीरानन्द जी कहते हैं कि यह तो करुणा निधान गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की कृपा है जिनके आशीर्वाद से विशुद्ध ब्रह्म परम् पिता महाप्रभु रामलाल जी महाराज की दिव्य लीलाओं को अपने शब्दों में आसानीपूर्वक कह लेता हूँ। देखें उक्त लीला की काव्यगत रचना जो महात्मा जी के ही द्वारा रचित है–

माँ भागवन्ती का भय

प्रभु रामलाल ने देख लई, थी माता गई घबराय
आँख उघारी थी जब भी, प्रभु जी रहे मुस्कराय
मुख से रहे मुस्कराये प्रभुजी, माता को हैरान किया
चेहरे पर मुस्कान छाई थी, अपना जीवन दान दिया
देखा जब माता ने प्रभु को, मन में खुशी मनाती थी
नहीं उठाती थी वह किसी को, आधी रात अँधियारी थी
हृदय की शंका नहीं मिटती मन में सोच ये करती थी
हाथ लगाती थी बच्चे को, बदन कांपता डरती थी
प्रभु रामलाल जी सोच रहे थे, माता अब भी डरती है
खुश कर दूँगा माता जी को, नहीं धीर यह धरती है।

माँ को रिझा कर उन्हें भयमुक्त करना

प्रभु रामलाल जी मुस्कराये थे, माता को रिझाते थे।
उछल-उछल कर उठते थे, माता को खूब हँसाते थे।

जब देख लिया है माता ने, जब प्यार किया है माता ने।
जब गोद लिया है माता ने, स्तन पर हाथ चलाते थे।

भय दूर किया है माता का, जब ध्यान किया है दाता है
नहीं पाया प्यार विधाता का, बिस्तर पर रोल मचाते थे।

कभी रो रोकर चिल्लाते थे, कमरे में रोल मचाते थे
कभी माँ को नाच दिखाते थे, कभी दीपक जाय बुझाते थे

बीती रात बताई रे, सुन-सुन कर प्रजा है आई रे।
सबको लीला दिखलायी रे, यो सबके मन को भाए थे।

भीड़ द्वार पर रहती थी, अमृत की नदियाँ बहती थीं।
जो कुछ प्रजा कह देती थी, पूरण कारज हो जाते थे।

जब मुख पर तेजी आती थी, उसे देख आँख मिच जाती थीं।
गुरु चन्द्रमोहन की ख्याती थी, अमीरानन्द लीला बनाते थे।

दोहा

जगह जगह शोर हुआ करने लगे प्रचार।
प्रजा का तांता लगा रहती भीड़ अपार।

रहती भीड़ द्वार, रोज मुसाफिर आते थे।
दर्शन करके योगेश्वर के आनन्दित हो जाते थे।

जो कुछ मुख से निकल जाये, वह बात पूर्ण हो जाती थी।
जिस पर हाथ रखें उसकी, काया निर्मल हो जाती थी।

चमत्कार जो देखा प्रभु का सबने था प्रचार किया।
पता नहीं कोई ऋषि मुनि या ईश्वर ने अवतार लिया।

शैशवकाल में ही महाप्रभुजी की अनेक अलौकिक लीलाऐं देखकर व शिवरूप में दर्शन करके लोग भ्रम में पड़ जाते थे। अनेक लोग पं० श्री गण्डाराम जी के घर आने लगे। उनकी कामनाऐं स्वयं पूर्ण हो जाती थीं। ज्योतिष, वेद–पुराण आदि शास्त्रों का ज्ञान वह बिना पढ़े ही बतला देते थे। विद्यालय में गुरुजन उनकी विलक्षण प्रतिभा को देखकर हैरान थे। लोगों की कुण्डली देख कर मुँह से जो भी कहते थे वह सत्य घटित होता था। पण्डित जी अत्यन्त हर्षित होकर कहते थे–मेरा बेटा ज्योतिष में मुझसे कहीं ज्यादा विद्वान है। बिना गणना किये ही फलादेश बता देता है। जब लोग उन्हें भगवान समझने लगते तो वह उनको भ्रम में डालने के लिए अनेक प्रकार की लीलाऐं करने लग जाते थे। बहुत भोले बन कर अचानक ही रोने लगते थे, कभी झगड़ा करते, कभी रूठ जाते थे। उन्हीं करुणार्णव दीनानाथ जी महान दया करके अपने बाल स्वरूप की अनेक लीलाओं को महात्मा अमीरानन्द जी को ध्यान में समय–समय पर दिखलाते रहे। भाई अमीरानन्द जी महाप्रभुजी के बाल स्वरूप का गुणानवाद निम्न पंक्तियों में करते हैं–

चमत्कार सब देख प्रभु के, लोग बड़े चकराते थे।
दूर-दूर से आएं यात्री, दर्शन करने आते थे।

कभी गली में खेल रहे, कभी उठा के माटी खेल रहे।
कभी भर-भर धूल बघेल रहे, कभी रेत में लोट लगाते थे।

कभी नंगे होकर चलते थे, कभी साबुन तन पर मलते थे।
कभी खड़े-खड़े उछला करते, कभी डंडा ढोल बजाते थे।

कभी माता चली पकड़ने को, तब हो गये साथ झगड़ने को।
कभी उठाते डण्डा लड़ने को, कभी पकड़े हाथ झटकने को।

कभी स्याही उठाई रगड़ने को, कभी योग ज्ञान कह उठते थे।
कभी इधर-उधर को भगते थे, कभी बस्ता ले कर चलते थे।

नहीं पढ़ने में मन लगता था, बस राम नाम ही गाते थे।
कभी पिता से बात बनाते थे, कभी ज्योतिष गणित लगाते थे।

महिमा पुराण की गाते थे, वेदों का ज्ञान बताते थे।
कभी भूखे प्यासे रहते थे, कभी पड़े धूप में रहते थे।

अमीरानन्द को कहते थे, सोते को आन उठाते थे।
दूर-दूर से आये यात्री, दर्शन करने आते थे।

(क्रमशः)

जिस कर्म के द्वारा भगवान हरि सन्तुष्ट हो सकें, वास्तव में वही कर्म कहा जा सकता है और जिससे मुकुन्दचरणों में रति उत्पन्न हो सके, वही सच्ची विद्या है। जिस वर्ण में, जिस कुल में और जिस आश्रम में रह कर श्रीकृष्ण -कीर्तन करने का सुन्दर सुयोग प्राप्त हो सके, वही वर्ण, कुल, आश्रम शुभ और परम श्रेष्ठ है।

जैन धर्म में योग की अवधारणा

–डा० रेखा चतुर्वेदी

भारतीय ध्यान और क्रियायोग पद्धति ने आधुनिक विश्व को अपनी ओर आकृष्ट किया है। वस्तुतः योग की प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक होने से इस पद्धति को वैज्ञानिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई है। योग विद्या की सहायता से शरीर और मन की क्रियाओं को एकाकार करते हुए साधक दिव्य अनुभवों से गुजरते हुए अपनी सुप्त शक्तियों को जगा लेते हैं। जब चित्तवृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं और सभी प्रकार की ऊर्जायें सामरस्य और सहकार को प्राप्त हो जाती है तो इसके परिणाम बड़े अद्भुत और विस्मयकारी होते हैं।

हमारे ऋषियों और मुनियों ने योग की क्रियाओं द्वारा अपूर्व पुरुष पराक्रम किये थे। क्रियायोग द्वारा अध्यात्म साधना के एक के बाद एक सोपान चढ़ते हुए उन्हें यह अनुभव हुआ कि वह विश्वचेतना से अभिन्न है। योग के द्वारा मनोइन्द्रियों का नियमन, शरीर का सन्तुलन, श्वास क्रिया पर नियन्त्रण होता है जिससे स्नायु तनावरहित, मन विकार और क्लेशों से मुक्त हो जाता है तथा उद्वेगों से उत्पन्न होने वाले विषमय रसायन अनुकूल रसायनों में परिवर्तित होकर शरीर को निरोग और स्वस्थ्य बना देते हैं। मन की शक्तियाँ भी जब इन शक्तियों में सम्मिलित हो जाती हैं तो यह क्रिया आत्मा की मुक्ति का कारण हो जाती है। इस प्रकार योग आत्मा की अतल गहराई में जाकर सकारात्मक शक्तियों के जागरण की सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक विधि है और अध्यात्म विकास की पूर्णता की कुंजी भी है।

योग मात्र एक पद्धति ही नहीं एक परम्परा भी है जिसका सम्बन्ध 'श्रेष्ठात् श्रेष्ठतरं" अर्थात् उच्च से उच्चतर और उच्चतर से उच्चतम् की ओर निरन्तर बढ़ने से है। इतिहास की दृष्टि से योगदर्शन और योगपद्धति अर्थात् योगपरम्परा मौलिक रूप से भारत की स्वदेशी परम्परा है जिसके प्रमाण न केवल भारत की अपितु विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक सिन्धु–सारस्वत सभ्यता से प्राप्त होते हैं। जहाँ खुदाई में योगी की ध्यानमुद्रा में बैठे हुए मूर्ति मिली है।

ध्यान देने योग्य यह भी है कि सिन्धु–घाटी से प्राप्त योगी की मूर्तियों और कुषाणकाल की जैन मूर्तियों में अपूर्व समानता है। इन मूर्तियों में प्रायः मूर्तियाँ कायोत्सर्ग मुद्रा में है। कायोत्सर्ग मुद्रा जैन परम्परा की देन है। प्राचीन जैन मूर्तियाँ अधिकांशतः इसी मुद्रा में प्राप्त होती है। मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त मूर्तियों की विशेषता यह है कि वह ऊर्ध्वस्थान

कायोत्सर्ग अर्थात् खड़ी मुद्रा में है, ध्यानलीन हैं और साथ ही नग्न हैं। खड़े रह कर कायोत्सर्ग करने की पद्धति जैन परम्परा में बहु प्रचलित है। यह भी स्मरण के योग्य है कि पातंजलि योगदर्शन में जिसे 'आसन' कहते हैं जैनाचार्य उसी को 'स्थान' कहते हैं। स्थान का अर्थ है गति–निवृत्ति जिसके तीन प्रकार हैं :–

१. ऊर्ध्वस्थान–खड़े होकर कायोत्सर्ग करना,

२. निषीदन स्थान– बैठ कर कायोत्सर्ग करना,

३. शयनस्थान–लेट कर कायोत्सर्ग करना।

पर्यंकासन (पद्मासन) भी जैन मूर्तियों की विशेषता है। धर्मपरम्पराओं की दृष्टि से योग मुद्राओं में विभेद होता है। इसी आधार पर जैन आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है–'प्रभो ! आपकी पर्यंकासन और नासाग्र दृष्टि वाली योगमुद्रा को भी परतीर्थिक नहीं समझ पाये हैं तो भला वह और क्या सीखेंगे ? प्रोफेसर प्राणनाथ ने मोहनजोदड़ो की एक मुद्रा पर जिनेश्वर लिखा हुआ पढ़ा है। अनेक पुरातत्वविद् तथा प्रतिमाशास्त्री इसे तीर्थंकर प्रतिमा कहते हैं। डेल्फी से भी एक प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में मिली है। यह प्रतिमा ध्यानलीन है और उसके दोनों कन्धों पर ऋषभदेव के समान केशराशि लटकी है। डा० कालीदास नाग ने इस मूर्ति को जैन प्रतिमा लक्षण शास्त्र के अनुरूप बताया है।

जिस कठोर साधना को वैदिक पद्धति में 'तप' कहा गया है वही कठोर साधना पद्धति जैन धर्म की शब्दावली में कायोत्सर्ग कहलाती है। इसके मूल में 'तपस्या' की ही धारणा है।

जैन और बौद्ध साहित्य में इतस्ततः श्रमणों का उल्लेख हुआ है। इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि मुनि और श्रमण एक अति विकसित और उदात्त निवृत्तिपरक आध्यात्मिक विचारधारा के प्रतिनिधि थे। श्रमणों के लिए प्रवृत्तिमूलक कर्म गर्हित थे तथा वह प्रवृत्तिधारा को आध्यात्मिक बन्धनों का कारण मानते थे। ये मुनि, परिव्राजक, वैरागी और श्रमण पारिवारिक जीवन को वासनामय होने के कारण त्याज्य और मुक्तिमार्ग की बाधा मानते थे। उनके अनुसार गृहस्थजीवन भोगमय होने के कारण अनेक तृष्णाओं और रोग–शोक का कारण है। मुक्ति और आत्मोत्कर्ष के लिए यह ब्रह्मचर्य, तपस्या, योग, अस्तेय, अपरिग्रह और कायक्लेश को यह आदर्श साधन मानते थे। सत्य और अहिंसा इसके आवश्यक उपबन्ध माने गये।

उत्तराध्ययन नामक जैन आगम सूत्र में **'कालीपव्वंग संकासे किस्से धमणि संतए'** यह पद मिलता है जो इस तथ्य का बोध है कि साधु तपस्या के द्वारा अपने शरीर को इतना कृश बना लेता है कि उसकी नाड़ियों का जाल स्फुट स्पष्ट दीखने लगता है।

साधु के लिए यह विशेषण यथार्थ है क्योंकि ऐसी योगमय तपस्या जैन मत में सम्मत रही है। आज भी सल्लेखना अर्थात् संकल्पपूर्वक कष्ट सहते हुए शरीर त्यागना जैन धर्म में मोक्ष का हेतु माना जाता है। जैन धर्म का विश्वास है कि ज्यों ज्यों शरीर को संयमपूर्वक अभ्यास से दुर्बल बनाया जाता है आत्मा सबल होती जाती है। ज्यों आत्मा बलवान होती जाती है और स्वभाव (चेतनामय आत्मप्रत्यक्ष) में आती है शरीर बन्धनों से छूटता जाता है और अन्ततः आत्मा सदा के लिए जन्मजन्मान्तर से मुक्त हो जाती है। जैन ग्रन्थ स्थानांगसूत्र में एक लाभकारी कार्य-कारण श्रृंखला बताई गई है जो इस प्रकार है :–

धर्म का फल श्रवण होता है, श्रवण का फल ज्ञान होता है, ज्ञान का फल विज्ञान होता है तथा विज्ञान का फल प्रत्याख्यान होता है। प्रत्याख्यान का फल संयम तथा संयम का फल कर्मनिरोध होता है। कर्मनिरोध (अनाश्रव) का फल तप होता है। तप का फल व्यवदान (निर्जरा) होता है। व्यवदान का फल अक्रिया अर्थात् मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति का पूर्ण निरोध होता है। अक्रिया या पूर्ण निरोध का फल निर्वाण (मोक्ष) होता है और निर्वाण का फल है सिद्ध गति गमन।

इस प्रकार हम देखते हैं कि योग मोक्षोन्मुख प्रक्रिया है। हमारे ऋषियों और मुनियों ने जो अतीन्द्रियार्थी थे इस परम सत्य का दर्शन किया था।

✲✲✲

भौतिक भोग के इस युग में योग का अवलम्बन ही करेगा आपका कल्याण
उत्तम और सफल जीवन की एकमात्र विश्वसनीय कुंजी है योग !

योग-पथ पर बढ़ने हेतु सिद्धयोग की शरण लीजिए

सिद्धयोग पढ़िये- पढ़ाइये !

योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक-पत्र

संस्कार शक्ति एवं साधना शक्ति (भाग-१४)

प्रेषक–**कु० रुक्मिणी वर्मा**

पूर्व प्रकरण में रजोगुण प्रधान व्यक्ति के लक्षण बताये गये थे। रजोगुण के अधिक बढ़ने पर तमोगुण का प्रवेश बहुत तीव्र गति से होता है। इन दोनों गुणों की प्रबल मात्रा के कारण व्यक्ति का राग–द्वेष उग्र हो जाता है। व्यक्ति आलसी बन जाता है तथा असत्य भाषण अधिक करता है। राग–द्वेष के कारण हमारे सोचने की सही प्रक्रिया अस्त–व्यस्त हो जाती है। राग–द्वेष में उलझे हुए व्यक्ति को पहचानना अति सरल है, *"उसके मुख से सत्य बातें कम निकलती हैं। दूसरों को बुरी लगेंगी, इसलिये अच्छी बातें करना या दो अर्थ वाली बात कहना, असहमत होते हुए भी दूसरे से सहमत होने का भाव प्रकट करना, अपने असली भावों को छिपाकर आँखों में प्रसन्नता के भाव दिखाना, किसी बात को न जानते हुए भी जानकार बनना–ये सब बातें आदमी के खोखला होने के और असत्य के विभिन्न रूप हैं। इनसे प्रकट होता है कि आदमी में सच्चाई की कमी है। –स्वेट मार्डेन*

साधना तभी तीव्र गति से आगे बढ़ती है जब साधक का मन सच्चाई से भर जाता है। यदि साधक के मन में राग–द्वेष ने अपना घर कर लिया तो लगातार परिश्रम करने के बाद भी मन की एकाग्रता न बनेगी। निर्मल मन केवल साधक का ही नहीं होना चाहिये अपितु जिन व्यक्तियों के बीच रहकर वह साधना करता है, यदि उन व्यक्तियों के मन में भी यही राग–द्वेष नाम विष घुला हुआ है तो भी साधक की साधना में व्यवधान आते रहेंगे। आस–पास रहने वाले ये व्यक्ति उसके परिवार में हों या आश्रम हों या जंगल में हो। आसपास के वातावरण का साधक पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिये जहाँ साधना की जा रही हो, वहाँ विचार वैमनस्य भी अधिक मात्रा में नहीं होना चाहिये, वातावरण को सुगन्धित करने के लिये सत्संग, भजन, कीर्तन, स्वाध्याय, गुरुचर्चा व ईश्वरचर्चा यदि होती रहे तो वातावरण को पवित्र बनाने में तथा साधक का उत्साह वर्धन करने में ये बातें ठोस सहायता पहुँचाती हैं। वातावरण शुद्ध होने से सतोगुण का विकास होता है, अन्तःकरण में निर्मलता आती है, व्यवधान समाप्त होते हैं। हृदय की निर्मलता से राग–द्वेष स्वयं चले जाते हैं, व्यक्ति में निर्भरता आने लगती है। किसी के मन में राग–द्वेष है, इसकी एक पहचान और है कि उसे भय (यह भय किसी झगड़े का, संपत्ति खर्च होने, नष्ट होने या छिन जाने या मृत्यु आने या किसी से बिछुड़ने आदि का, किसी भी प्रकार का हो सकता है) लगने लगता है, उसे जरा–जरा सी बात पर क्रोध आने लगता है, हताशा व निराशा उसके जीवन में छायी रहती है, वह हर समय उद्विग्न सा रहता है, लोभ उसके मन में अधिक मात्रा में समाने लगता है, उसका दिमाग तनाव से भर जाता है, उसे जल्दी–जल्दी रोग होने लगते हैं। वह केवल अपना भला सोचता है, किसी की सहायता से वह अपना

हाथ खींच लेता है, कृपण बुद्धि उसे विवेक उत्पन्न नहीं होने देती, वह अधिक चिन्तातुर रहने लगता है। जब उपर्युक्त लक्षण किसी में नजर आने लगे तो समझो उसका हृदय भी अब स्वस्थ नहीं है। उसका दिल कमजोर होने लगता है, वात, कफ, पित्त आदि दोष उसके शरीर में बढ़ने लगते हैं। इसलिये गलत सोच पैदा करके अपना हृदय गन्दा नहीं करना चाहिये, नहीं तो चित्त अवश्य दूषित होगा।

"राग-द्वेष" नामक जहरीली नागिन का दूध (भोजन) गलत सोच है। हाई-ब्लड प्रेशर व लो ब्लड प्रेशर, दिल घबराना व पेट में वायु अधिक बनना, तनाव रहना तथा चक्कर आना ये सब लक्षण गलत सोच के पनपने के कारण से होते हैं। दिल और दिमाग उसी का स्वस्थ रह सकता है, जिसकी सोच भी सही हो। गलत सोच के चलते शारीरिक व मानसिक थकान बढ़ जाती है तथा हमारी मानसिक ऊर्जा समाप्त होती जाती है। ऊर्जा का स्थायित्व और थकान से बचना ईश्वर की प्राकृतिक लय पर निर्भर करता है। राग-द्वेष में पड़कर हमारी सोच इतनी गलत हो जाती है कि भावनाओं का तेज उतार-चढ़ाव हमारे दिल को कमजोर कर देता है तथा मानसिक शक्ति क्षीण कर देता है। हमें अपनी शक्ति को किसी भी सूरत में कमजोर नहीं होने देना चाहिए क्योंकि कमजोर व्यक्ति को सब दबाते हैं। सबल व्यक्ति से कोई टक्कर नहीं लेता, कमजोर व्यक्ति पर सभी बरस पड़ते हैं (अर्थात् अपना कोप बरसाते हैं)। दुर्बल व्यक्ति पर दस दोष फालतू के थोपे जाते हैं, वह जहाँ भी जाता है, बली का बकरा बनाया जाता है अर्थात् हर गलती का परिणाम (चाहे वे गल्तियाँ किसी अन्य के द्वारा की गयी हों) उसे ही भुगतने पर मजबूर किया जाता है। अतः यदि व्यक्ति यथार्थ में सही ढंग से जीवन की सुन्दर व्यवस्था चाहता है तो उसे दुर्बल मानसिक तरंगें स्वयं में पैदा ही नहीं होने देनी चाहिये। जब हम दूसरों के घावों पर सान्त्वना का मरहम रख सकते हैं तो अपनी चिन्ताओं और विपदाओं के घावों पर सन्तोष एवं सान्त्वना का मरहम क्यूँ नहीं रख सकते और इस प्रकार हमारा दिल और दिमाग भी कमजोर होने से बच जायेगा। स्वेट मार्डेन लिखते हैं कि–

एक हृदय विशेषज्ञ का कहना है, "हमारे शरीर में सबसे ताकतवर मांसपेशी हमारे हृदय की मांसपेशी है। एक जीवनकाल के दौरान यह इतनी ऊर्जा पैदा करती है, जितने में एक पानी के लड़ाकू जहाज को पानी से चौदह फीट ऊपर उठाया जा सके। लेकिन गलत सोच के चलते हृदय की माँसपेशी भी अपना लचीलापन और प्रभाव खोने लगती है। यदि भय, क्रोध, उद्विग्नता, हताशा और तनाव जैसे अस्वस्थ्य विचारों को देर तक दिमाग में रखा जाये तो बार-बार देखा गया है कि इस शक्तिशाली और महत्वपूर्ण मांसपेशी की क्षमता कम होती जाती है और भयानक परिणाम सामने आने लगते हैं।" अतः सही सोच पैदा करनी चाहिये। हमारी ईश्वर में आस्था, मंत्रजप, ईश्वर का अथवा गुरु का ध्यान, ग्रन्थों का पठन हमारी सोच में बदलाव लाने में अटूट योगदान देते हैं। ईश्वरीय चिन्तन के द्वारा ही हृदय की निर्मलता बढ़ सकती है तथा राग-द्वेष का विष समाप्त हो सकता

है। आध्यात्मिक मार्ग में भी राग द्वेष तब समाप्त होगा, यदि साधक निरअभिमानी होकर साधना करे तथा उसे किसी पद या प्रतिष्ठा तथा व्यक्ति का मोह न हो अन्यथा इस मार्ग पर अधिक पथभ्रष्ट होने की सम्भावनायें बन जाती हैं। यदि साधक के मन में ईश्वर के चरण–कमल की भक्ति पाने के अलावा कोई पद (जैसे महन्त पद, मठाधीश पद, किसी संस्था का संचालक पद) अथवा कोई प्रतिष्ठा (लोग मेरा सम्मान करें, और मेरे आगे–पीछे घूमें, हाँ में हाँ मिलायें, मेरी सेवा करें, अखबारों, पत्रिकाओं में मेरा नाम हो) या अर्थ लाभ (मेरे इतने आश्रम, गौशाला, धर्मशाला, पाठशाला, अस्पताल आदि हों, मरने के बाद मेरा इन स्थानों पर नाम खुदा रहे) की आकांक्षा है तो वह साधना नहीं कर सकता और राग–द्वेष के जहर से भी नहीं बच सकता तथा भय, चिन्ता व क्लेश उसे घेर लेते हैं।

यदि ईश्वर की भक्ति के अलावा कुछ नहीं चाहिये तो ही सतोगुण का विकास होगा क्योंकि मान, पद, प्रतिष्ठा, अर्थसंचय ये सब तो साधारण व रजोगुण प्रधान व्यक्ति के लक्षण हैं। केवल वैरागी व्यक्ति ही राग–द्वेष से दूर रह सकता है क्योंकि वैराग्यवान व्यक्ति मायिक प्रपंचों में नहीं फँसता न ही उसे किसी प्रकार का कोई भय रहता है। राग के रहते इच्छित वस्तु की कामना तथा कामना की पूर्ति के लिये उद्यम व चिन्ता की मात्रा भी उसी अनुपात में बढ़ने की सम्भावना बन जाती है। अतः साधक को बिल्कुल निर्लिप्त मन होकर साधना करनी चाहिये, अपने भविष्य की अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिये। चिन्ता से मन की शक्ति द्रुतगति से नष्ट होती है। 'चिन्ता छोड़ो, सुख से जियो' (How to stop worrying and start Livings) नामक विश्व प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक 'डेल कारनेगी' ने चिन्ता रूपी कीड़े हमारे मस्तिष्क को किस प्रकार खोखला करके हमारी मस्तिष्क की ऊर्जा नष्ट करते हैं, इस बात को समझाने के लिये डा० हेरी एमरसन फोसडिक द्वारा जंगल के बहुत बड़े विशाल वृक्ष की कहानी का उदाहरण दिया है पृ० न० ५८ पर। यथा–

कॉलरेडो की लोंगपीक की ढाल पर एक विशाल पेड़ का खोखर है। प्रकृति विज्ञान के जानकारी उसकी उमर चार सौ वर्ष बताते है। उनका कहना है कि जब कोलम्बस सेल सलवाडर के किनारे उतरा था यह खोखर अंकुर के रूप में और प्लिम्बस में पिलग्रीमस के बसने के समय यह अर्धविकसित रहा। इसके जीवन काल में चौदह बार इस पर बिजलियाँ गिरी और चार सौ वर्षों से तूफान और हिमानियों के असंख्य आघात इसने सहे; फिर भी जीता रहा। आखिर गोबरेलों (छोटे–छोटे कीड़े) की सेना ने उस पर धावा बोल दिया और उसे धराशायी कर दिया, इसकी छाल को कुतर–कुतर कर इन कीड़ों ने इसके अन्दर रास्ता बनाया और धीरे–धीरे निरन्तर आक्रमणों द्वारा उस पेड़ की आन्तरिक शक्ति नष्ट कर दी। जंगल का यह विशाल वृक्ष काल से नहीं मिटा, बिजली से (१४ बार) नष्ट नहीं हुआ, तूफानों से नहीं हारा पर अन्त में उन छोटे–छोटे कीड़ों से हार गया, जिन्हें आदमी अपनी अँगुलियों और अँगूठे के बीच मसल सकता है।"

इसी प्रकार हमारे जीवन में भी विचित्र तूफान आते हैं, हिमपात होता है, बिजलियाँ गिरती हैं, पर हम नष्ट नहीं होते, किन्तु चिन्ता रूपी कीड़ों से हम मात खा जाते हैं। इसलिये भविष्य की चिन्ता इतनी अधिक भी नहीं करनी चाहिए कि वर्तमान में संचित शक्ति भी नष्ट हो जाये। भविष्य की चिन्ता करने वाले की शक्ति व्यर्थ में नष्ट होती है। मानसिक क्लेश और स्नायु कष्ट उसके पीछे लगकर उसे तबाह कर डालते हैं। चिन्ता रूपी दीमकों की कतारें मस्तिष्क की एक–एक परत खा डालती हैं। छोटी–छोटी बातें दीमकों की तरह मस्तिष्क में कटान पैदा करती हैं, द्वेष, ईर्ष्या, भय, तथा चिन्ता रूपी कीड़े मस्तिष्क की समस्त ऊर्जा का भोजन करके, नसों को भी खाने लगते हैं और अन्त में हमें पूर्णरूपेण शक्तिहीन बनाकर हमें नष्ट कर डालते हैं। अतः जीवन तुच्छ बातों में समय गँवाने के लिये नहीं है। जोश और उत्साह बरकरार रखो, टकरावों और तनावों से बचो। यदि हम बेहिसाब तनाव अपने ऊपर ले लेंगे तो हमारी शान्ति, शक्ति और ऊर्जा का ह्रास निश्चित है। प्रार्थना, आस्था, ध्यान, अच्छे विचार और निःस्वार्थ भावना दिमाग में रचनात्मक ऊर्जा देने की सर्वोत्तम औषधियाँ हैं और धैर्य और सहनशक्ति ही इन औषधियों में अमृत का कार्य करती हैं। हमारा धैर्य छोटी–छोटी बातों पर अधिक टूट जाता है, ऐसा नहीं होना चाहिये।

हम बहुतया जीवन में विकट परिस्थितियों का साहस और धैर्य से मुकाबला कर लेते हैं पर छोटी–छोटी बातों को अपने पर हावी होने देते हैं जो कि हमारी मानसिक दुर्बलता है। हमें प्रयत्न करना चाहिये कि हम स्वयं को व्यस्त रखें ताकि विगत और आगत इन दो पहलुओं पर अधिक विचार करने का अवसर ही न रहे। खाली समय में अपने सुख–दुख पर विचार करना ही हमारे दुखी होने का कारण है। अतः हमें स्वचिन्तन में भी अधिक शक्ति नष्ट नहीं करनी चाहिये। ईश्वर चिन्तन से आह्लाद व स्वचिन्तन से प्रलाप ही हाथ लगता है। 'जो बीत गयी, सो बात गयी, आगे की सुधि लेय' इस उक्ति को जीवन में चरितार्थ करके ही आगे सफलता मिलती है। दुर्योधन बहुत शक्तिशाली था परन्तु आगत और विगत इन दोनों पर विचार करना ही उसका स्वभाव था कि भीम ने यह किया, अर्जुन यह कह गया, पितामह ने ऐसा कर दिया आदि–आदि और विचारों की इसी प्रकार की श्रृंखला में उलझकर वह राग–द्वेष से पीड़ित हो जाता था। अब मुझे ऐसा करना चाहिये, मैं बदला लूँगा, उन्हें मार दूँगा, राज्य मेरा होगा, अधिकार मेरा होगा, मैं चक्रवर्ती बनूँगा। यदि ये न मरे (पाण्डव) तो क्या होगा ? मैं दासों की तरह रहूँगा, मेरी धाक न रहेगी, आगे मेरे पुत्र भी राज्य से वंचित होंगे आदि–आदि इसी प्रकार की आगत बातें उसे झकझोर देती थीं, मन में चुभन व कटन पैदा कर देती थी, उसका विवेक गिर जाता था और धैर्य तथा सहनशक्ति नष्ट हो जाती थी, उसका चैन खत्म हो जाता था। आगत और विगत ये दो पहलू मन में काम, क्रोध और लोभ पैदा करते हैं तथा मन की एकाग्रता का नाश करते हैं। महाभारत की लड़ाई आगत और विगत इन दो पहलुओं पर विचारशीलों के बीच

अधिक हुई। ईर्ष्या–द्वेष की अग्नि इतनी उग्र हो चुकी थी कि एक–दूसरे के प्राण लेकर प्राणों के साथ खतम हुई।

द्रौपदी की प्रतिज्ञा पूरी करने में पाण्डवों को गान्धारी के सौ पुत्र मारने पड़े। सौ पुत्रों की माता गान्धारी पुत्रहीन होकर रह गयी, अन्त में द्रौपदी की भी गोद सूनी रह गयी, उसके सभी महारथी पुत्र मार दिये गये। अर्जुन पुत्र मरा, भीम पुत्र मरा, नकुल–सहदेव, धर्मराज पुत्र मरे। राज्य के पीछे राग व प्रतिद्वन्दी से द्वेष, बस आग ही आग फैला गयी। अन्त में पाँचों पाँडवों की विजय होने पर भी वे शान्ति से न रह सके, उन्हें रह–रहकर अपने स्वजनों का खून–खराबा नजर आता था। हिमालय में जाकर वे भी एक–एक से बुरी दशा में बिछुड़ते रहे। कर्म का परिणाम सभी को भुगतना पड़ा। जिस बल के अभिमान पर पितामह काशी नरेश की तीन कन्याओं का अपहरण कर लाये थे, उसमें अम्बा का विवाह न हो सका क्योंकि वह महाराज शाल्व को पति मान चुकी थी, तब अपहृत समझकर शाल्व ने भी उससे विवाह न किया, प्रतिज्ञा के कारण पितामह ने भी उससे विवाह न किया, अपने जीवन की बरबादी का एकमात्र कारण पितामह को समझ उसने घनघोर तप किया और यज्ञ में प्राणों की आहूति दे दी, मात्र इस संकल्प के साथ कि मैं भीष्म की मृत्यु का कारण बनूँ। वही अम्बा अगले जन्म में शिखण्डी बनी। अब देखिये कि जिस घनघोर तप से ईश्वर साक्षात्कार किया जाता है, वह तप किसी मोक्ष व भक्ति के योग्य भी न रहा, बस एक द्वेष के कारण उस तप का आधार किसी का प्रतिशोध ही रहा और फिर भी इस भूलोक पर जन्म–मरण के चक्कर में गिरना पड़ा। तप भी किया और फिर बन्धन मिला। ऐसा तप किस काम का ? जिस साधक का मन प्रतिशोध से खाली नहीं, राग–द्वेष से खाली नहीं, तो धिक्कार है ऐसे तप व साधना को। तप का आधार मात्र भक्ति व वैराग्य होना चाहिये।

जो व्यक्ति अपनी इच्छाओं पर संयम नहीं कर सकता, क्रोध को नहीं पी सकता, शान्त नहीं रह सकता, ईर्ष्या खत्म नहीं कर सकता, वह कहाँ का साधक ? साधना का अर्थ ही है मन को साधना, मन को साधने का अर्थ है इन्द्रियों का गुलाम न होना। अतः स्वयं ही कुवृत्तियों पर नियन्त्रण व ईश्वरीय प्रेम व जन–जन से प्रीति, यही साधना सराहने लायक है, इसी साधना की शक्ति से कुसंस्कार कटेंगे नहीं तो साधना का फल वही होगा जो अम्बा का हुआ, रावण, कुम्भकर्ण, हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु आदि का हुआ। यदि मन में भोग की इच्छा है तो दस शीश देकर भी विनाश को प्राप्त होना पड़ेगा। साधना केवल वही माननीय, सराहनीय व वन्दनीय है जो प्रकृति नहीं बल्कि पुरुष (परम पुरुष, ईश्वर) के चरण कमलों की भक्ति पर आधारित हो। यदि साधना करते समय भी राग रहा या द्वेष रहा तो इससे अच्छा होगा कि मेहनत करो व सांसारिक धर्म ही निभाओ, नये आगन्तुक साधकों के लिये मार्गदर्शक वाला जीवन न अपना कर यदि साधना को निर्मल नहीं कर सकते तो उनके लिये पथभ्रष्ट होने का कारण भी तो न बनो। (क्रमशः)

❊❊❊

ईश्वर अवतार का हेतु

–कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

एक बार की बात है। भगवान आशुतोष एवं जगत जननी पार्वती अपने ईष्ट के विषय में बैठे सतसंग कर रहे थे। पार्वती ने पूछा–हे नाथ श्री रामचन्द्र जी ब्रह्म हैं, चिन्मय एवं अविनाशी तथा सबके अन्तःकरण में निवास करते हैं। उनके अवतार की कथा को श्रवण करने की इच्छा है। भूतभावन भोलेनाथ पार्वती के शुद्ध अन्तःकरण को जानकर तथा जिज्ञासु वृत्ति के उठने के कारण भगवान के चरित्र को सुनाने के लिए तैयार हो गये। भगवान बोले–हे देवी भगवान के सुन्दर विस्तृत और निर्मल चरित्रों का गान वेदों एवं शास्त्रों में किया गया है। हरि का अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण यह है कि–**"इदमित्थं कहि जाई न सोई।"**

अर्थात् हरि के अवतार के अनेकों कारण हो सकते हैं। उनमें कुछ ऐसे भी होते हैं, जिसको लोग जान नहीं पाते हैं। हे देवी हमारे मत से तो भगवान श्री राम की तर्कना, मन, वाणी और बुद्धि से नहीं की जा सकती है। यद्यपि वेद, पुराण, संत व मुनि आदि ने अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ कहा है। जब–जब धर्म की हानि तथा नीच और अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं। वे गौ ब्राह्मण देवता, पृथ्वी एवं पृथ्वी पर रहने वाले जीव जब कष्ट पाते हैं तब वे कृपानिधान सबके कष्टों को दूर करने के लिए भिन्न–भिन्न दिव्य शरीर धारण करते हैं–

असुर मारि थापहि सुरन्ह।
राखहि निज श्रुति सेतु।।
जग बिस्तारहि बिसद जस।
राम जनम कर हेतु।।

अर्थात् वे असुरों को मारकर देवताओं को स्थापित करते हैं। अपने (श्वांस रूपी) वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं। यही अवतार का कारण है। भगवान के सुन्दर यश रूपी कार्यों को गा–गाकर भक्तजन भवसागर से तर जाते हैं। वे कृपा सागर भगवान भक्तों के हित के लिए ही शरीर धारण करते हैं। वैसे भगवान श्री राम के अवतार के अनेकों कारण हैं। वे एक से बढ़कर एक हैं। वे कृपा सागर रावण, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु आदि हेतु कुछ

ऐसे अवतार धारण किये जिसमें अपने भक्तों को कृतार्थ करने के कारण बने है। ईश्वर के अवतार की एक कथा असुर राज जालंधर का कारण बना। जालंधर एक महाबली दैत्य था। उससे युद्ध में सभी देवता परास्त हो गये, यहाँ तक कि हमें (शंकर) भी परास्त होना पड़ा। उस असुर को जीतना कठिन इसलिए था, कि उसकी स्त्री बड़ी ही पतिव्रता थी। उसके पातिव्रत्य के कारण उसे मार पाना आसान न था। भगवान ने छल से उस स्त्री का व्रत भंग कर देवताओं का काम किया। उसी सती के कारण भगवान को श्राप भी सहना पड़ा। किन्तु ईश्वर के लिए श्राप भी कल्याण का कारण बनता है। उस सती के श्राप को धारण कर दूसरे जन्म में उसके पति का उद्धार कर दिया। हे देवी एक बार नारद ने भी श्राप दिया उसका भी कारण था–

नारद श्राप दीन्ह एक बारा।
कलप एक तेहि लगि अवतारा।।
गिरजा चकित भई सुनि बानी।
नारद विष्णु भगत पुनि ज्ञानी।।

नारद के श्राप की बात को सुनकर पार्वती ने पूछा–हे देवाधिदेव नाथ मुनि ने भगवान को किस कारण से श्राप दिया। लक्ष्मीपति से कौन सा ऐसा अपराध नारद के प्रति हो गया था। तब भूत भावन हँसकर बोले–

बोले बिहसि महेस तब ज्ञानी मूढ़ न कोई।
जेहि जस रघुपति करहि जब सो तस तेहि छन होई।।

अर्थात् हे देवी–इस संसार में न कोई ज्ञानी है न मूर्ख क्योंकि भगवान श्री रघुनाथ जी जब जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही उन्हीं की प्रेरणा से करने लगता है। क्योंकि जीव उसी के माया के आधीन होकर विवशतावश उस कार्य को करता है। तुलसीदास जी ने इसीलिए जीवों को चेताया और कहा–

भव भजन रघुनाथ भजु।
तुलसी तजि मान मद।।

अर्थात् मान और मद को छोड़कर आवागमन का नाश करने वाले रघुनाथ जी को भजना ही श्रेयस्कर है।

भगवान के अवतार के प्रयोजनों में साधु पुरुषों की रक्षा तथा असाधु पुरुषों के नाश का मुख्य कारण है। गीता में योगयोगेश्वर भगवान श्री कृष्ण जी ने कहा है कि–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।

अर्थात साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए, पापकर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिए मैं युग–युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

तात्पर्य यह है कि यह परम पुरुष जगत के लोगों के कल्याण के लिए अपने विभिन्न रूपों में अवतार लेकर अदृश्य रूप से कार्य को कर देता है। सामान्य जन को इसका आभास नहीं हो पाता है। वैसे भी वह परम पुरुष अपने कृत्यों का आभास नहीं होने देता है। उस पर माया का आवरण डालते रहते हैं। इस प्रसंग का यशोदा और कृष्ण की लीला कौशल्या और राम के चरित्रों कृष्ण एवं ग्वालों के उपाख्यानों से ज्ञान होता है।

हमारे गुरुदेव भगवान का भी कथन है कि–"योगी व्यक्ति को प्रकाश दिखाकर पीठ पीछे कर लेता है।

वस्तुतः ईश्वर के अवतार के प्रयोजन प्रत्येक युग विशेष में होता आया है। इस प्रयोजन की सिद्धि हेतु वह परम कृपाल किसी व्यक्ति को आधार बनाकर भी अवतार के हेतु भी सिद्धि करते है। इसलिए ईश्वर की कृपालुता तथा उनके अहैतुक कृपा के प्रति व्यक्ति को कृतज्ञ होना चाहिए। इसी में जीवन की सार्थकता है। देवाधि देव शंकर ने पार्वती की जिज्ञासा को विभिन्न उपाख्यानों को देकर शान्त किया। देवी भी अपने को कृतार्थ मानने लगी तथा अपने ईष्ट के अवतार के हेतु को भी जानने में सक्षम हुई। तात्पर्य यह है कि हम कलियुगी प्राणी कलिमल तथा अपने कर्मों के अधीन है। वह कृपालु अकारण दयालु प्रभु विभिन्न अवतार को ग्रहण कर जीवों का उद्धार करते रहते हैं। ईश्वर के उस कृत्य को हम अहंकारवश एवं समर्पण वृत्ति के न होने से कुछ समझ नहीं पाते हैं। हम अपने को किसी प्रकार दोषी मानते ही नहीं है। हर असफलता पर हम ईश्वर को ही कोसते हैं। यह हमारी कृतघ्नता कही की जायेगी। हमारे अन्दर धर्म एवं सन्तोष की वृत्ति ही नहीं बनती है। इसी कारण जीव कष्ट भोगता है। वस्तुतः जीवन में कष्ट कुछ भी नहीं है। हमारी सोच जैसी होती है, हम उसका फल पाते है। जबकि होना यह चाहिए कि हम ईश्वर के प्रति समर्पित हो।

❀❀❀

धर्म ही एक ऐसा मित्र है, जो मरने पर भी उसके साथ जाता है और सब तो शरीर के नाश के साथ ही उसको त्यागकर अन्यत्र चले जाते हैं।

सत् गुरु की आवश्यकता

लेखक–वेदव्रत द्विवेदी (उमापुर)

आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक त्रिविध तापों से संतप्त मानव अपने संताप की निवृत्ति के लिए उसी प्रकार लालायित रहता है, जैसे दीर्घकाल का रोगी औषधि के लिए। उस रोगी के मर्ज को बिना पहिचाने कैसी ही बहुमूल्य औषधियाँ क्यों न दी जाय, क्या वह अच्छा हो सकता है ? उसे तो योग्य डाक्टर, हकीम या वैद्य की अत्यन्त आवश्यकता है। जो उसके रोग को पहिचानकर उसका निदान कर सके। इसी प्रकार भव रोग से संतप्त मानव को भी तत्ववेत्ता श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु की नितान्त आवश्यकता है, जो उसको तत्वज्ञान रूपी अमृत पान कराकर दुःख निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति करा सके।

आज का भौतिक विज्ञान भी गुरु की महत्ता को सिद्ध करता है। सामान्यतया गुरु का अर्थ है जिससे हमें अच्छे गुणों की या किसी कला की प्राप्ति हो, उसे गुरु कहते हैं। विज्ञान सम्बन्धी हम अच्छी से अच्छी कितनी ही पुस्तकें क्यों न पढ़ जायें, किन्तु उस किताबी ज्ञान से हम न तो हवाई जहाज या कोई इंजन या मशीन ही बना सकते हैं और न ही उसे आकाश में उड़ा सकते हैं। ठीक उसी प्रकार संगीत सम्बन्धी कितनी ही मोटी–मोटी पोथियां रट ली जायें, उस ज्ञान से न तो हम अच्छा संगीत अलाप सकते हैं न उससे हारमोनियम, तबला आदि वाद्यों का मधुर स्वर ही निकाल सकते हैं। इसी प्रकार ज्योतिष आदि शास्त्र भी समझना चाहिए; क्योंकि पुस्तकें जड़ होती हैं उनसे कभी भी हमें क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। विज्ञान इस बात को सिद्ध करता है कि उस ज्ञान के लिए हमें किसी वैज्ञानिक, संगीतज्ञ तथा ज्योतिषी की शरण अवश्य लेनी पड़ेगी तभी वह प्राप्त हो सकता है। उसी प्रकार आध्यात्मिक तत्वज्ञान या जीवन की गुत्थी सुलझाने के लिए अच्छे चरित्रवान, त्यागी, तपस्वी, शास्त्रज्ञ अनुभवी गुरु की शरण में जाना होगा जो शिष्य के हृदय से 'गु' यानि अज्ञान रूपी अन्धकार को हटाकर 'रु' अर्थात् ज्ञान रूपी प्रकाश डाल सके–

गु शब्दस्त्वन्धकारः स्यादुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते।।

क्योंकि दीपक से ही प्रदीप प्रज्वलित होता है। शुकदेव की भाँति मुक्त पुरुष ही परीक्षित जैसे अज्ञानी जीवों को मुक्त कर सकता है।

वह विशुद्ध परमब्रह्म कौन हो सकता है ?

इसका सीधा और सहज उत्तर है, पूर्ण सिद्धयोगिराज, श्री चन्द्रमोहन जी महाराज।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवेनमः।।
(गुरुगीता)

अर्थात्–अज्ञान रूपी– अन्धकारावृत्त चक्षुओं को आत्मज्ञान रूपी अंजन की शलाका से जिसने खोल दिया है, ऐसे गुरु को नमस्कार है। भारतीय साहित्य में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की संज्ञा दी जाती है।

'नास्ति तत्वं गुरोः परम्''

के अनुसार गुरु से बढ़कर कोई तत्व नहीं है।

इतना ही नहीं कबीर दास जी ने बिल्कुल सत्य और स्पष्ट कह दिया है कि–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की जिन गोविन्द दियो लखाय।

सच्चे आत्ममंथन के बाद यह दृष्टिगोचर होता है कि गोविन्द से बड़े सद्गुरु होते हैं।

कबीर जी के दृष्टि में गुरु बड़े परमार्थी हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन दूसरों के लिए होता है। दूसरों को शान्ति देने वाले होते हैं। जैसे कि उन्होंने स्वयं कहा है कि–

गुरु बड़े परमारथी शीतल जिनके अंग।
तपन बुझावे और की देकर अपना संग।।

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध हो जाती है गुरु की महिमा और उनकी अतुलित शक्ति, जिसका संवर्धन स्वयं सद् शिष्यों पर करते हैं।

सद्गुरु की उपासना

उपासना के विषय में शास्त्रों में बतलाया है कि–

''शालग्रामेविष्णुर्बुद्धि'' अर्थात् जिस प्रकार शालिग्राम में विष्णु का आरोप करके बिना किसी भेद–भावना के उपासना की जाती है उसी प्रकार सद्गुरु की उपासना का क्रम भी बतलाया है जैसे कि–

यस्य देवे पराभक्तर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताः ह्यर्थीः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

अर्थात् पुरुष (उपासक) की जैसी ईश्वर में परम भक्ति होती है, वैसे ही गुरु में होनी चाहिए। उसी पुरुष अर्थात उपासन को हृदय में कथन किये हुए महावाक्यों का अर्थ प्रकाशित होता है। इसी को भगवान ने गीता में शारीरिक तप बतलाया है–

देव द्विज गुरु प्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।

क्योंकि द्विज, मन्त्र, तीर्थ, देवता, दैवज्ञ औषधि तथा गुरु में जो जैसी भावना से सेवन

उपासना करता है, उसे वैसी ही सिद्धि मिलती है।

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।।
जन्मदाताऽन्नदाता च माताऽन्ये गुरवस्तथा।
पारं कर्तुं न शक्तास्ते घोर संसार सागेर।।
विद्या मन्त्र ज्ञान दाता निपुणः पारकर्मणि।
सशक्तः शिष्य मुद्धर्तुमीश्वरश्चेश्वरात्परः।।

अर्थात्–इस घोर संसार सागर से गुरु के बिना न जन्मदाता माता–पिता, न अन्नदाता और न बन्धुबान्धव पार करने में समर्थ हैं अर्थात् ये सब संसार से पार नहीं कर सकते हैं; किन्तु विद्या, मन्त्र, ज्ञानादि का दाता निपुण श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ तारक ब्रह्म मेरे सद्‌गुरु देव भगवान ही पार करने में समर्थ हैं। वही साक्षात् ईश्वर हैं। और वही शिष्य का उद्धार करने वाला है। इसलिए मनुस्मृति में बतलाया गया है कि–

गुरु शुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समनुश्यते।

अर्थात्–गुरु सेवा से ही मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकता है। इसलिए अनन्य भाव से गुरु भक्ति का आदेश हमारे शास्त्रों ने दिया है।

इसी से मानव का कल्याण संभव है।

निर्गुरो दर्शनं कृत्वा हतपुणयो भवेन्नरः।
गुरोः सेवाविधिं शिक्षेच्छ्रीकृष्ण परमात्मनः।।

(गर्ग संहिता ६ अ० ५ श्लोक ७)

अर्थात्–जिसका गुरु न हो उसके दर्शन करने से मनुष्य के पुण्य क्षीण हो जाते हैं। इसलिए शास्त्र वेत्ता गुरु से मन्त्रादि की दीक्षा लेकर फिर भगवान की उपासना करनी चाहिए।

परन्तु अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सद्‌गुरु आपकी जय हो, जय हो। आप ही प्रत्येक प्राणी के अन्तःकरण में अन्तर्यामी रूप से विराजमान हैं। आप सदा एवं सर्वदा अपने सद्‌शिष्य का पथ–प्रदर्शन करते हैं। अपनी स्वार्थ–दृष्टि के कारण भले ही वह अपना अधःपतन कर ले, तथापि उस अवस्था में भी आप उसे सत्पथ का संकेत कराने में कभी नहीं चूकते। आपकी वह मंगलमयी सत्प्रेरणा सर्वदा एकरस और बाह्य परिस्थितियों से अप्रभावित हैं। ऐसे आपके अन्तरात्मस्वरूप शाश्वत् विग्रह की सदा ही जय हो, जय हो।

कबिरा ते नर अंध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठे तो ठौर है, गुरु रूठे नहि ठौर।।
गुरु बिनु भव निधि तरै न कोई।
जो विरंचि शंकर सम होई।।

❊❊❊

"सत्य आचरण के बिना कोई साधना सम्भव ही नहीं"

(कुँवर) अनिल कुमार सिंह, एडवोकेट, मीरजापुर

मन को सत्य का स्नान कराये बिना तो ध्यान का फल मिलेगा नहीं अन्तर की खोज शुरु नहीं होगी। तुम अपने झूठ, कपट, छल माया मोह भरे व्यस्त जीवन में से रोज ४० मिनट भले ही निकाल लो, दो बार स्नान भले ही कर लो, माँस–मदिरा, यौनाचार भले ही छोड़ दो लेकिन यदि झूठ नहीं छोड़ा तो अन्तर की यात्रा कभी शुरु नहीं होगी। मौन होकर, पाल्थी लगाकर, आँखें मूँद कर चाहे कितना बैठो परन्तु सत्याचरण के बिना दृष्टि ऊपर मस्तिष्क की ओर बढ़ जायेगी और तुम गहरी सोच में डूब जाओगे परन्तु तुम भ्रम में पड़ जाओगे कि ध्यान लग गया।

प्रत्येक क्रिया के कुछ प्रारम्भिक मानक होते हैं। योग–साधना की भी कुछ लाक्षणिक आवश्यकताएँ हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो सुख–शान्ति पाने की इच्छा करने वाले करोड़ों लोग तत्काल अन्तर की यात्रा पर चल पड़ते। जैसे कुम्भ और मक्का के लिए भीड़ चलती है। सिर्फ ४० मिनट ही तो रोज देना होगा। सुबह २० मिनट और शाम २० मिनट। कितना आसान, कितना सस्ता। परन्तु होता क्या है ? एक हजार आदमियों को यह सब बताने पर एक आदमी प्रयोग करने के लिए तैयार होता है। प्रातःकाल की ताजी हवा कितनी स्वच्छ और स्वास्थ्यवर्धक है। कौन नहीं जानता है ? परन्तु मुफ्त में मिल रहे इस लाभ को भी कितने लोग लेते हैं ? ऊषाकाल में उठकर प्रातः भ्रमण को जाते हैं। और जितने आदमी प्रयोग करते हैं उनमें से ६५ प्रतिशत पहले दो चार दिन में ही नियम तोड़ देते हैं। रोज समय नहीं जुटता। कुछ प्राप्ति नहीं हुई। सुन रखा था कि तीन दिन में ही प्रकाश दिखाई पड़ने लगते हैं, नाद सुनाई देता है या सीधे–सीधे भूल गये। और जितने लोग लगन से आगे बढ़ते हैं उनमें से भी ६५ प्रतिशत सोच–विचारों के प्रवाह को मनोविकारों का रेचन समझ बैठते हैं या एक दो महीने तक किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन लक्षित न होने पर धैर्य खो बैठते हैं।

अब तो लोग सब बताने पर भी इस यात्रा की ओर रुझान नहीं दिखाते। वे स्पष्ट ही झूठ की परतों से दबे हैं कि यह बात उनके कान के बाहरी परतों तक ही रह जाती है। उन्होंने जीवन में कुछ क्षण सत्य के साथ गुजारे हैं। वे रुचि तो प्रकट करेंगे परन्तु सत्य की उतनी बैटरी चुक जाने पर बाकी परदों का भेदन कठिन हो जायेगा, परन्तु जिनका मन सत्याचरण से धुला है परन्तु सांसारिक व्यवहारों एवं भौतिक कष्टों से परेशान है वे पालथी मारते और आँखें बन्द करते ही अन्तर की यात्रा पर चल पड़ते हैं।

आज के युग में दुःखी वही है, कष्ट में वही है जिनका आचरण सत्य पर टिका है।

प्रत्येक दूसरे सांसारिक प्राणी की तरह माँस-मदिरा यौनाचार्य में डूबा भी वह सत्याचरण करता है। झूठ, पाखण्ड, छल से दूर रहता है। प्रेम, दया, सेवा के नाम का छला नहीं करता, करुणा से ओत-प्रोत वह प्राणी मात्र के कल्याण की बात सोचता और करता है।

जो सत्याचरण नहीं करता वह साधना विश्वविद्यालय में यथोचित प्रवेश पाने का अधिकारी नहीं बनता। साधना द्वारा सहज ही शारीरिक एवं भौतिक लाभ उठाने की लालच में अगर वह प्रवेश करने की धृष्टता भी करता है तो शीघ्र ही भौतिक एवं चमत्कारिक उपलब्धियों के मायाजाल में फँसकर वहीं का वहीं रह जायेगा। जिस यात्रा पर वह निकला था उस राह की पहली मंजिल पर बने आरामदेह पड़ाव के ऐश्वर्य में ही अगर वह भरम गया तो फिर गया। काम से गया। खोज से गया। सुख एवं शान्ति से गया।

सत्याचरण का मार्ग बड़ा ही सीधा है। कष्ट होता है या नहीं ? कष्ट होता है ? या सिर्फ समझाते हो कि कष्ट होता है ? कभी यह कष्ट उठाकर देखा है ? नहीं तो कैसे मालूम होता है ? और अगर कष्ट भोगा है तो क्या उन लोगों के कष्ट से ज्यादा है, जिनका आचरण मिथ्या है। उनमें से कुछ की सम्पन्नता से तुम्हें ईर्ष्या होती है ? परन्तु उन्हें फिर भी सुख शान्ति नहीं, यही देखा नहीं क्या ? वे सुखी होते तो दिन-रात भगवान से मिन्नतें क्यों माँगते ? और सत्याचारी तो दुखी है, कष्ट में है उसे कभी भगवान से कुछ माँगते देखा है, सिवा उसे ही, अर्थात् वे भगवान से भी भगवान को ही माँगते हैं, सत्य पथ पर टिके रहने की शक्ति माँगते हैं।

सत्याचरण का उपाय बड़ा सीधा है, सरल है। आजमा कर देख लो ! दिन में एक घण्टा झूठ मत बोलो। चाहे कुछ हो जाये उस एक घण्टे में झूठ मत बोलो। दूसरे दिन या दूसरे सप्ताह रोज झूठ न बोलने का समय बढ़ा दो। और अगर साहस जमा कर सको तो कल से ही झूठ बोलना बन्द कर दो। एकदम बन्द। थोड़ा कष्ट सह लो। थोड़ा नुकसान झेल लो। परसों से ध्यान प्रारम्भ कर दो। दिन का सत्याचरण तुम्हें अन्तर की शाखा पर सकुशल ले चलेगा, तुम्हारी रक्षा करेगा। आज के झूठों से छुटकारा पाने और सत्याचरण में पड़ने वाले सांसारिक एवं भौतिक कष्टों को झेलने की शक्ति देगा। तुम्हारा २० मिनट सुबह और २० मिनट शाम सफल हो जायेगा। कल्याणकारी बन जायेगा।

ध्यान के लिए २० मिनट का ही समय क्यों ? ज्यादा या कम क्यों नहीं ? ज्यादा या कम समय ध्यान करने में कोई हानि है क्या ? हानि कुछ भी नहीं है। बीस मिनट से कम समय देने में ज्यादा सम्भावना इसी बात की है कि ध्यान की प्रक्रिया शुरु ही नहीं होगी। परन्तु यह भी सबके लिए सत्य नहीं है। अपवाद हो सकते हैं। जो व्यक्ति यूँ ही सत्यवादी होगा, सात्विक रहन-सहन का होगा, धीर और गम्भीर होगा, बहुत सम्भव है उसमें ध्यान की प्रक्रिया तुरन्त, चार-पाँच या १० मिनट में ही शुरु हो जाये। परन्तु बहुत से अनुभव शोध एवं अनुसंधानों के परिणाम स्वरूप २० मिनट के औसत समय की सलाह दी गई है।

यद्यपि सामान्यतः ध्यान में बैठने के १०–२० मिनट बीत जाने के बाद साधक की नाड़ी, श्वांस, मस्तिष्क शिराओं एवं रक्तचाप में ठहराव आता है, स्थिर गति आती है, संतुलन एवं नियंत्रण स्थापित होता है।

इस स्थिति में आने के बाद अर्थात् २० मिनट में से १५ मिनट बीत जाने के बाद, शारीरिक स्थिरता की प्राप्ति के बाद ध्यान के लिए तो सिर्फ ५ मिनट ही कहा गया है। इन पाँच मिनटों में या इसके बाद समय, सामर्थ्य, रुचि, इच्छा होने पर चाहे जितनी भी देर ज्यादा ध्यान में बैठने के बावजूद ध्यान तो दो–चार सैकेण्ड का ही लगता है। कि ध्यान यदि चार सेकेण्ड का भी लग जाय तो समझो सर्वस्व मिल गया। ईश्वर मिल गया। ईश्वर पा लिया। परमात्मा से जुड़ गये। बौद्ध दार्शनिक का कहना है कि जिसका ध्यान चार मिनट लग गया वह स्वयं ईश्वर हो गया।

ध्यान के लिए क्या मंत्र की आवश्यकता अनिवार्य है, सहायता आवश्यक है ? नहीं। अनिवार्य एवं आवश्यक तो नहीं परन्तु लाभप्रद अवश्य है। कार्य अधिक ही सहज हो जाता है। मंत्र एक हथियार है। एक ऐसा चुम्बकीय हथियार जो वायुमण्डल एवं व्योम में व्याप्त एवं प्रवाहित शक्ति तरंगों को एकत्र कर मन के भीतर उतार देता है। मंत्र की धार जितनी पैनी होगी उसकी चुम्बकीय शक्ति उतनी ही तीव्र एवं प्रभावकारी होगी। शरीर के अन्दर, मन की गहराईयों में सुप्त आत्मा पर पड़ी दुष्कर्मों की परत का रेचन करने के लिए काँट–छाँट करने के लिए, तराशने के लिए मंत्र जितना पैना होगा शक्तिशाली होगा, चुम्बकीय आकर्षण युक्त होगा, शक्ति तरंगों द्वारा मार्जित होगा, उसकी रेचन शक्ति उतनी ही प्रखर एवं सहज होगी।

मंत्र के लगातार जाप करने से रेचन क्रिया में रत शक्ति तरंगों का सिलसिला प्रवाह बना रहता है, टूटता नहीं, थकता नहीं। मंत्र बहुत है, व्योम में, सृष्टि में, जितनी भी शक्तियाँ हैं उन सबकी तरंगों का स्वरूप, स्वभाव, घुंघरालापन (वेव), सूक्ष्मता, चुम्बकीय गुण अलग–अलग है। और ये अलग–अलग मंत्रोच्चारण द्वारा बनी ध्वनि तरंगों के चुम्बकीय आकर्षण द्वारा आकर्षित होती है। प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक अवस्था एवं आवश्यकता अलग–अलग है। किस–किस की आवश्यकता है जो कि उसकी जरूरत एवं लाभ की शक्ति तरंगों को व्योम में से बटोर कर मन की गहराईयों में उतार दें यह केवल "श्री गुरुदेव" ही बता सकते हैं। इसीलिए "श्री सद्‌गुरुदेव" की इतनी महिमा जानी जाती है।

"गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वराः।
सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरुसेवया।।"

अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी उस सद्‌गुरु तत्व की आराधना से ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं। यह भगवान शिव की वाणी है। श्री प्रभुजी के चरणों में साष्टांग प्रणाम।

✲✲✲

करुणामूर्ति गुरुदेव

रचना शर्मा, गंगापुर सिटी

इस संसार में हमारे सभी व्यक्तियों के साथ परस्पर संबंध बने हुए हैं, सबके साथ हमारा कोई न कोई रिश्ता जुड़ा हुआ है; कोई माँ है, कोई पिता कोई भाई है कोई बहिन तो कोई सखा या मित्र। सभी आपस में संबंध बनाए हुए मगर इस संसार में इन सब रिश्तों से हटकर जो एक परम पावन रिश्ता इस संसार में है वह है गुरु और शिष्य का या फिर कहें भक्त और भगवान का अलौकिक संबंध।

यह एक ऐसा अनूठा अद्‌भुत संबंध है जिसके अंतर्गत ही भाई बन्धु, सखा, माता–पिता सभी का प्रेम समाविष्ट होता है, सद्‌गुरुदेव व शिष्य का संबंध एक ऐसा परम पावन अनूठा संबंध है जिसकी उपमा ही संसार में किसी से भी नहीं दी जा सकती। प्रत्येक युग में परमपिता परमेश्वर सद्‌गुरु रूप में अवतीर्ण होकर अपने संस्कारी जीवों का उद्धार करने के लिए उद्यत रहते हैं; यह परिपाटी युगों–युगों से चला आ रहा सनातन सत्य है। सामाजिक जगत में हमारे बन्धु बाँधव मित्र सभी कुछ न कुछ स्वार्थ के वशीभूत होकर हमसे प्रेम करते हैं, मगर माता–पिता का जो संबंध है उसे संसार में सर्वश्रेष्ठ माना गया है, माँ अपने बच्चे से निःस्वार्थ प्रेम करती है, माँ को अत्यंत पूज्यनीय व सबसे ऊँचा पद प्रदान किया गया है मगर इस संबंध से भी अधिक सर्वश्रेष्ठ पद प्रदान किया गया है वह गुरुदेव व शिष्य का अत्यंत पवित्र पावन अलौकिक रिश्ता।

माँ अपने संतान की निःस्वार्थ सेवा करती है उसे जन्म देकर जीवन प्रदान करती है। नौ माह तक अपने गर्भ में रखकर अपने लहू से उसको सींचती है और तरह–तरह की यातनाएँ दुःख भोगकर उसे इस संसार में लाती है। माँ अपनी संतान का लालन–पालन पूरे मनोयोग से करती है। अपने बच्चे को अँगुली पकडकर तब तक चलना सिखाती है जब तक कि वह भली भाँति चलना न सीख जाए, समस्त व्यवहारिक बातों का ज्ञान सिखाती है और उसे समस्त बुराइयों से सदैव दूर रखती है। जिस प्रकार माँ और शिशु का अद्‌भुत संबंध है ऐसा ही अद्‌भुत व अनूठा संबंध होता है गुरुदेव व शिष्य का। गुरुदेव भी अपने शिष्य को संसार की समस्त बुराइयों से दूर हटाकर नया जीवन प्रदान करते हैं। विषम परिस्थितियों में भी हँसकर जीने की कला सिखाते हैं। मगर हम जगत के जीव अज्ञान ग्रसित होने के कारण नहीं समझ पाते क्योंकि इस समस्त जगत को माया–मोह रूपी तिमिर ने आच्छादित कर रखा है, अपने परिवार, बन्धु–बाँधवों के झूठे प्रेम में फँसकर जगत के जीव अपने सच्चे साथी को विस्मृत कर देते हैं। जिस प्रकार बालक माता–पिता का अंश है, माता–पिता के अणुओं से निर्मित हुआ है। माँ का रक्त बच्चे में बह रहा है, पिता की ऊर्जा बच्चे में प्रवाहित हो रही है, अंश का अपने अंशी की तरफ आकृष्ट होना स्वाभाविक है। वह अपने माता–पिता की ओर दौड़ेगा। लेकिन यदि खिलौनों से खेलने लगेगा तो कुछ समय के लिए माता–पिता को भूल जायेगा। बालक खिलौनों के प्रलोभन में माता–पिता को विस्मृत कर सकता है मगर माता–पिता कभी अपनी संतान को नहीं भूल

पाते।

माँ काम में लगी है मगर ध्यान का तीर बच्चे की तरफ है कहीं आग को न छू ले, कहीं गड्ढे में न गिर जाये, कहीं चोट न लग जाये, कहीं गंदगी में न चला जाए। माँ का शरीर कार्यरत है मगर चेतना बच्चे का छाया की तरह अनुसरण करती है, जरा सी आवाज सुनी, जरा सा क्रन्दन सुना बस सब काम छोड़–छाड़ कर जल्दी दौड़ पड़ती है। बच्चे को गोद में उठाती है, आँचल में छुपा लेती है, दुलारती है, पुचकारती है, अगर बच्चा कीचड़ में सना है तो यह नहीं देखती कि मेरे कपड़े गंदे हो जायेंगे, बच्चे को आग से नहीं खेलने देगी क्योंकि बालक उन्हीं का अंश है उन्होंने ही उसे जन्म दिया है। अगर बालक को कष्ट होगा तो माँ को भी कष्ट होगा।

ऐसा ही अद्भुत संबंध होता है गुरुदेव व शिष्य का। गुरुदेव भी अपने शिष्य की शिशु की भाँति पग–पग पर सार संभाल करते हैं, गुरुदेव बोध में है मगर शिष्य भ्रान्ति में है। हम जगत के खिलौनों के प्रलोभन में गुरुदेव को विस्मृत कर देते हैं। मगर सद्गुरुदेव तो अर्न्तयामी है हमारा उद्धार करने हमें सद्मार्ग दिखाने के लिए ही तो वो अपने शाश्वत सिद्ध लोगों को छोड़कर मृतलोकों में आते हैं। सद्गुरुदेव अपने शिष्य को बोध के दीपक का प्रकाश दिखाते हैं। बता देते हैं कि तुम जगत के खिलौनों से कितना ही खेलो मगर तुम्हारे प्रभु की दृष्टि तुम पर टिकी है। गुरुदेव विश्व नियन्ता हैं। समस्त सृष्टि का संचालन उनकी उपस्थिति मात्र से हो रहा है। उनकी दृष्टि अपने प्रत्येक संस्कारी बालक पर टिकी है। सद्गुरुदेव देखते हैं कि चेतना इन्द्रियों के तल पर आकर विषयों की ओर झाँक रही है मन के धरातल पर आकर संकल्पों विकल्पों के प्रवाह में बह रही है। बुद्धि विचारों के बीहड़ में भटक रही है। अहं से जुड़कर कर्तव्य की कालिक पुत गई है।

जब बच्चा आग को पकड़ने दौड़ेगा तो माँ उसे धक्का मारकर अलग कर देगी बच्चा रोएगा, नाराज हो जाएगा, सोचेगा, मेरे माता–पिता ने मुझे मारा। गुरुदेव भी जब अपने शिष्य को विकारों की लपट से धक्का मारकर रोकते हैं तो शिष्य अपने प्रभु से नाराज होते हैं। गुरुदेव तुमने यह क्या कर दिया हम तो तुम्हें अपना समझते थे तुमने ऐसा क्यों कर दिया। अभी तो सुख का बसंत आया था और दुखों का झंझावत भेज दिया। मगर सच तो यह है कि जो अपना होगा उसे अपने का ध्यान रहेगा। यदि माँ बच्चे के फोड़ा में चीरा न लगाए तो फोड़ा बड़ा हो जायेगा, मवाद भरता चला जाएगा और अंत में करालकाल के गाल में ले जायेगा। कौन माँ चाहेगी कि उसकी संतान को पीड़ा हो मगर उनकी मजबूरी है फोड़े का इलाज। गुरुदेव की विवशता है, शिष्य का इलाज। मगर इस चिकित्सा का कार्य हमें अप्रिय लगे तो यह हमारी भूल है।

दूसरे अर्थों में कहें तो गुरुदेव इस विश्व रूपी वाटिका के कुशल माली हैं। जिस प्रकार माली की निगाह अपने हर पौधे पर रहती है, उसी प्रकार गुरुदेव की निगाह अपने हर शिष्य पर टिकी रहती है। कुछ शिष्य होते हैं जो गुरुदेव को प्रणाम करते हैं, श्रद्धा रखते हैं। मगर शिष्य होने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। सोचते हैं दरिया गहरा है तैरना आता नहीं छलांग लगाऐंगे तो डूब जायेंगे। एक दृष्टि से देखें तो उनका तर्क उचित है,

मगर तैरना सीखना है तो छलांग लगानी पड़ेगी। सूखे किनारे पर खड़े होने मात्र से तैरना नहीं आएगा। शिष्यत्व तो ग्रहण करना पड़ेगा। साधना की आग में स्वयं को तपाना ही पड़ेगा, तभी सच्चे अर्थों में शिष्य कहलाने योग्य होंगे और सबसे बड़ी बात तो यह है कि बिना सद्गुरु को समर्पण किए बिना सद्गुरु का अनुभव प्रेम नहीं मिल पाएगा। हम देखते हैं कि पौधे तो सभी उगते हैं मगर जिस पौधे को माली का प्रेम मिलता है उस पौधे का रूप ही कुछ और होता है। उस पर फूल भी अनूठा खिलता है। उनकी सुगन्ध अनुपम होती है। मगर जिन पौधों का माली नहीं होता उनके चारों ओर घास जमा हो जाती है। वह वाटिका नहीं जंगल बन जाता है।

वाटिका के माली को अपने हर पौधे का ध्यान रहता है। खुरपी से चारों ओर जमी खरपतवार को हटाता है, अपने पौधों का पालन-पोषण उसी प्रकार करता है जिस प्रकार माँ अपने बच्चे का लालन-पालन करती है। कभी-कभी माली के हाथ में कैंची होती है जिनसे वह पौधों की कटाई छँटाई करते हैं। जो कमजोर पौधे हैं जिन्हें अधिक विकसित नहीं होना है वे मना कर देते हैं। लेकिन जिन्होंने माली का प्यार देखा है वे चुप रहकर अपनी कटाई छँटाई करवाते हैं। क्योंकि वो सच्चाई जानते हैं कि इस कटाई छँटाई में भी हमारा हित छुपा हुआ है। कुछ ही दिनों में वो पौधे आकाश को छूने लगते हैं। मगर जिन पौधों पर कैंची नहीं चलती वो बौने रह जाते हैं। सद्गुरु माली भी अपने शिष्यों पर साधना रूपी कैंची चलाते हैं। कुछ तो अपनी कटाई छँटाई से घबराकर पलायन कर जाते हैं मगर कुछ साहसी समर्पित खड़े रहते हैं। उनकी कटाई छँटाई होती है पहले तो लगता है सब कुछ नष्ट हो जायेगा, मगर धीरे-धीरे ताजी कोंपले आने लगती हैं। अतीत झड़ जाता है, वर्तमान उभर कर सामने आता है, सद्गुरु अपने प्रेम से सींचकर सघन वृक्ष बना देते हैं। माली तो पर्दा कर लेता है मगर वो वृक्ष मौन रहकर भी माली की महिमा का प्रतीक होते हैं।

ऐसा ही सद्गुरु और शिष्य का प्रेम होता है। गुरुदेव तो अपना काम करके अंतर्ध्यान हो जाते हैं मगर सद्शिष्य सद्गुरु के पुष्प बनकर खिलते हैं। उनकी सुगन्ध को दिगदिगन्त तक फैलाते हैं। वास्तविक सत्य तो यह है कि सद्गुरु शिष्य नहीं बनाते अपितु वह तो गुरु ही बनाते हैं उनके प्यार का रंग इतना चढ़ता है कि शिष्यत्व विदा हो जाता है और गुरुता का अवतरण होता है। जो शिष्य स्वयं को साधना के मार्ग में निरन्तर तपाते हैं वो अपने गुरु की ही तस्वीर होते हैं। गुरुदेव अपने शिष्य को साधना की आग पर निरंतर तपाते हैं और तब तक तपाते रहते हैं जब तक वह अपने लक्ष्य की पूर्णता को प्राप्त न कर ले।

जब जीव (शिष्य) गुरुदेव के इस अनूठे प्रेम का स्वाद चख लेता है तो दुनिया के रंगों से स्वतः ही कटता चला जाता है। उसका तो मात्र एक ही लक्ष्य रह जाता है, उसके गुरुदेव ! बस अपने गुरुदेव का ही ध्यान, उन्हीं का चिन्तन एकमात्र उनके सामीप्य से जब उसे भाई बन्धु, सखा सबका प्रेम मिलने लगता है तो फिर जगत के लोगों से क्या अभिप्राय है ? छलावे धोखे से परिपूर्ण इस जगत से वह कटने लगता है और अपने गुरुदेव की सामीप्यता की अभिलाषा मन में लिए अपना समस्त जीवन व्यतीत कर देता है।

जय गुरुदेव।

❊❊❊

श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र

श्री सिद्धगुफा, सवाँई (एत्मादपुर)

का

यौगिक सत्साहित्य

पुस्तक का नाम	मूल्य	पुस्तक का नाम	मूल्य
1. योग सिद्धान्त, भाग–1	रु. 100.00	22. योगेश्वर चरित्रमाला	रु. 5.00
2. योग सिद्धान्त, भाग–2	रु. 100.00	23. सर्वसमर्थ गुरुदेव	रु. 7.00
3. मेरी निजानुभूतियाँ	रु. 10.00	24. अद्भुत महायोगी	रु. 10.00
4. भोग–रोग–योग	रु. 10.00	25. सद्गुरु संकीर्तन भजनमाला	रु. 5.00
5. जीवन तत्व (बड़ा)	रु. 15.00	26. योग अमृत भजनावली	रु. 5.00
6. जीवन तत्व (छोटा)	रु. 5.00	27. दीदी के भजन	रु. 5.00
7. ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी	रु. 10.00	28. मेरा सवाँई आगमन	रु. 7.00
8. योगिराज मुल्खराज जी	रु. 10.00	29. सवाँई के चमत्कार	रु. 10.00
9. प्रभुजी की स्वहस्तलिखित कथायें	रु. 20.00	30. अध्यात्म भजनावली–1	रु. 5.00
		31. अध्यात्म भजनावली–2	रु. 5.00
10. मन की एकाग्रता के साधन	रु. 7.00	32. अध्यात्म भजनावली–3	रु. 5.00
11. आठ योगी	रु. 10.00	33. अध्यात्म भजनावली–4	रु. 5.00
12. योग क्यों – कैसे	रु. 7.00	34. अध्यात्म भजनावली–5	रु. 5.00
13. गुरु गीता	रु. 10.00	35. Life Force	रु. 10.00
14. योगी की अतुलित शक्ति	रु. 7.00	36. योगासन चित्रपट	रु. 10.00
15. सुधा संगीत	रु. 5.00	37. योगासन चित्रपट (छोटा)	रु. 5.00
16. योग क्या ?	रु. 5.00	38. महायोगी की लोकयात्रा	रु. 100.00
17. यम–नियम	रु. 7.00	39. गुरुदेव वचनामृत (तीन खण्डों में)	रु. 100.00
18. यौगिक षट्कर्म	रु. 5.00		
19. सचित्र योगासन	रु. 20.00	40. सद्गुरु कृपालीला, भाग–1	रु. 35.00
20. समाधिस्था योगनियाँ	रु. 10.00	41. सद्गुरु कृपालीला, भाग–2	रु. 40.00
21. योग रामायण	रु. 20.00	42. चरणोदक	रु. 10.00

उपरोक्त पुस्तकें आश्रम पर स्वयं आकर अथवा डाक द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं।
डाक एवं पैकिंग खर्च पाठकों को स्वयं वहन करना होगा। – व्यवस्थापक

महान कर्मयोगी

देवाधिदेव महादेव

देवासुरों द्वारा समुद्र मंथन के समय हलाहल विष निकला। प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि उस उल्बण (अत्यन्त उग्र) गरल का पान कौन करे? सारे संसार में कोलाहल मच गया। पशु, पक्षी, मनुष्य घबराने लगे। सभी आशुतोष औढरदानी देवाधिदेव महादेव की शरण में गये। भगवान् विष्णु ने भी हँसते हुए कहा– 'घर में आई कमाई की पहली वस्तु बड़े पुरुष की होती है। अत: यह आपका ही भाग हुआ, आप ही इसे ग्रहण करें।'

भगवान भोलेनाथ शंकरजी परम दयालु ठहरे। उनकी दयालुता और भक्तवत्सलता का वर्णन हमारे जैसे अज्ञानियों के लिए दुष्कर है। भगवान विष्णु के कथन पर वे भी हँस पड़े। दया की साक्षात् मूर्ति ने पराम्बा पार्वती से कहा – देवि ! देखो, आज प्रजा पर कैसा भीषण संकट पड़ गया है। इस कालकूट की ज्वाला से दिशाओं में प्रचण्ड अग्नि धधक रही है, जीवों के प्राण–पखेरू निकलना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में यदि मैं इनकी रक्षा न करूं, इन्हें उस आपत्ति से न बचाऊं तो मेरी शक्ति का, मेरे ऐश्वर्य का क्या उपयोग हो सकता है? उसी शक्तिमान् की शक्ति प्रशंसनीय है जिसका उपयोग दीनदुखियों की रक्षा और पालन–पोषण में होता है। बड़ा भारी ब्रह्मज्ञानी हो, बड़ा भारी भक्त हो और बड़ा भारी कर्मयोगी भी हो परन्तु यदि वह दीनों की उपेक्षा करता है, उनकी रक्षा नहीं करता तो उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है, उसकी भक्ति विफल हो जाती है और कर्मयोग अपूर्ण रह जाता है।'

ऐसा कहकर और विष्णु भगवान की बात को भी ध्यान में रखते हुए भगवान शंकर ने उस विष को, अमृत के समान मानते हुए, एक ही घूंट में पान कर लिया।

उस विष के प्रभाव से शंकर का कण्ठ नीला पड़ गया, मानो जगत के कल्याण के लिए किये गये उस महान कर्म की साक्षिता देने के लिए वह उनके गले का आभूषण बन गया – '**यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम्**' उनका नाम नीलकण्ठ हो गया। महापुरुषों की यही रहनी है, उनका सहज स्वभाव है कि अपने लिए कोई कर्तव्य अभीष्ट न रहने पर भी – कोई ताप, संताप न रहने पर भी – लोगों के परोपकार के लिए वे कर्मों में लगे रहते हैं और कष्ट सहन किया करते हैं, क्योंकि भगवान की यह सबसे बड़ी आराधना है।

देवासुर संग्राम अनादि काल से होता चला आ रहा है सत्व, रज और तमोगुण की प्रधानता को लेकर संसार में सर्वत्र नित्यप्रति छोटे–बड़े विवाद होते ही रहते हैं। उन कलह रूपी तापों को मिटाने के लिये जो सत्पुरुष विष का घूंट पीकर रह जाते हैं, वे मानो भगवान नीलकण्ठ के रूप में निष्काम कर्मयोग की ही शिक्षा देते हैं।

SIDDHYOG Regd. No. L.Ag. 008

January, 2006

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

□□□□□□

यदाभासोऽप्युयन् कवलितभवध्वान्तविभवो दृशं तत्वान्धानामपि दिशति भक्तिप्रणयिनीम्।
जनस्तस्योदात्तं जगति भगवन्नाम तरणे कृती ते निर्वक्तुं क इह महिमानं प्रभवति।।

अर्थात्—हे भगवन्नाम - सूर्य ! तुम किसी भी संकेत से यदि उच्चारित हो जाते हो तो आवागमनरूप अन्धकार का ग्रास करके तत्त्व दृष्टि से अन्धे मनुष्यों को भी श्रीकृष्ण भक्ति को प्राप्त कराने वाली दृष्टि दे देते हो; अतएव इस जगत में ऐसा कौन विद्वान् पुरुष होगा जो तुम्हारी उदात्त महिमा का वर्णन कर सके ?

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सँवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक–आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा

PRINTPOINT-0562-2262261